UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180322

UNIVERSAL
LIBRARY

एकांकिका

(सात भावपूर्ण एकांकी नाटकों का संग्रह)

लेखक—

श्री चन्द्रकिशोर जैन, बी०ए०

प्रकाशक—

जीवनकला-मन्दिर, सहारनपुर, यू० पी०

मुद्रक—

श्री श्यामसुन्दरलाल, स्टार प्रिंटिंग प्रेस, सहारनपुर

प्रथम संस्करण
एक हजार प्रतियां

मार्च १९४४

युद्ध-कालिक मूल्य
दो रुपये

कापी राइट
चन्द्र किशोर जैन बी० ए०

पुस्तक मिलने के पते--

जीवन कला मन्दिर, स्टेशन रोड, सहारनपुर।
महावीर किशोर जैन, नन्द भवन, नहटौर (बिजनौर)
शिवाजी बुक डिपो, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ।
गङ्गा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ।
हिन्दी भवन, हस्पताल रोड, लाहौर।
हिन्दी पुस्तक भंडार, नागपुर।
दीदी कार्यालय, ७३० कटरा, प्रयाग।
सरस्वती प्रेस बुक डिपो, बनारस कैंट/देहली।
श्री सुमनेश जी जोशी, जोधपुर राज्य।
पुस्तक भंडार, लहरिया सराय, दरभंगा।
हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, गिरगांव, बम्बई।
युगान्तर साहित्य मन्दिर—भागलपुर।
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी पटना/काशी/दिल्ली/कलकत्ता।

द्वार-पूजा

समय-समय पर मैंने जब ये एकांकी लिखे, तो स्वप्न में भी यह ध्यान न था कि ये कभी पुस्तक का रूप लेंगे, पर श्रीमती बहन चन्द्रवती ऋषभसैन जैन के स्नेह ने मुझे प्रेरणा और प्रोत्साहन के समुद्र श्री प्रभाकरजी के सम्पर्क में ला दिया। फल स्वरूप "एकांकिका" के साथ आज मैं हिन्दी-मात्-मन्दिर में प्रवेश कर रहा हूँ। प्रवेश के इस अवसर पर मेरे पैरों में दर्प की थिरक नहीं है, कन्धों पर संकोच का बोझ ही है।

नाट्यकला की दृष्टि से मुझे अपने नाटकों के विषय में कुछ नहीं कहना है, क्योंकि नाट्यशास्त्र का बाक़ायदा अध्ययन मैंने कभी नहीं किया। अध्ययन मेरी रुचि के विरुद्ध है—मेरे नामके पीछे बी०ए० की डिग्री जीवन का एक करिश्मा ही समझिये। असल में मैं उस श्रेणी का युवक हूँ, जिसे बुज़ुर्ग आवारा कहते हैं और साहित्यिक अल्हड़, पर मैं अपने जीवन से पूरी तरह सन्तुष्ट हूँ। चीनी आचार्य श्री लिन यू तांग की सम्मति में तो आवारगी ही जीवन का चरम विकास है।

इनमें से अधिकांश नाटक आल इन्डिया रेडियो द्वारा ब्राडकास्ट हो चुके हैं; रेडियो के लिए ही ये लिखे गए थे। रेडियो की एक अपनी "टेकनीक" है और वह इन नाटकों में मौजूद है, किन्तु ये कहीं भी बिना रोक-टोक एवं कठिनाई के खेले जा सकते हैं।

नाटक के साथ मेरा संबंध जन्म से ही है। छोटी अवस्था में मैंने बंगला और हिन्दुस्तानी नाटक खूब देखे, विद्यार्थी अवस्था में खूब पार्ट किया और आगे चलकर संगीत और कला दोनों में निर्देशन। इस प्रकार सारे जीवन नाटक के साथ सम्बन्ध रहने के कारण मेरे मनपर नाटक का एक नक्शा सा बन गया है। उसके अनुसार मैं कह सकता हूँ, ये नाटक ठीक हैं।

अपने पूर्ववर्त्ती कलाकार सर्व श्री सेठ गोविन्ददास, डा० राजकुमार बर्म्मा, उदयशंकर भट्ट, भुवनेश्वर जी, प्रो० सदगुरू शरण अवस्थी आदि के

प्रति यहां मैं नतमस्तक हूँ, जिन्होंने जनता और पत्र-सम्पादक, दोनों की उपेक्षा सहकर भी हिन्दी में एकांकी की कला का विकास किया और अपने साहित्य में स्थान का निर्माण भी।

सुहृदवर श्री आशाराम शुक्ल का मैं कृतज्ञ हूं टाइटिल के चित्र के लिए, और स्टार प्रेस के व्यवस्थापक श्री घनश्यामदास का मुद्रण सम्बन्धी सुविधा के लिए। दिल्ली रेडियो का भी मैं खास तौर पर कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मेरी मौलिक रचना "विष-कन्या" को बहुत सफल रूप से प्रसारित करने के लिए कोई कसर नहीं उठा रक्खी और जिसके फल-स्वरूप यह नाटक सारे स्टेशनों से प्रसारित किया गया।

अपनी धर्मपत्नी श्रीमती विजयकुमारी जैन का भी मैं आभारी हूं जिन्होंने नाटकों के लिखने में और प्रेस का मैटर तैय्यार करने में जी तोड़ सहयोग दिया।

यहीं इतना और कि इनमें से एक नाटक बंगला की छाया है और दूसरे में प्लाट के सम्बन्ध में बाहर से सहायता ली गई है।

अब जैसी भी है, यह कृति पाठकों को भेंट है, इस आशा के साथ कि भविष्य में मैं उनके सामने अपनी और भी सुन्दर कृतियां रख सकूंगा।

नन्द भवन
नहटौर (बिजनौर)
१ मार्च १९४४

चन्द्रकिशोर जैन

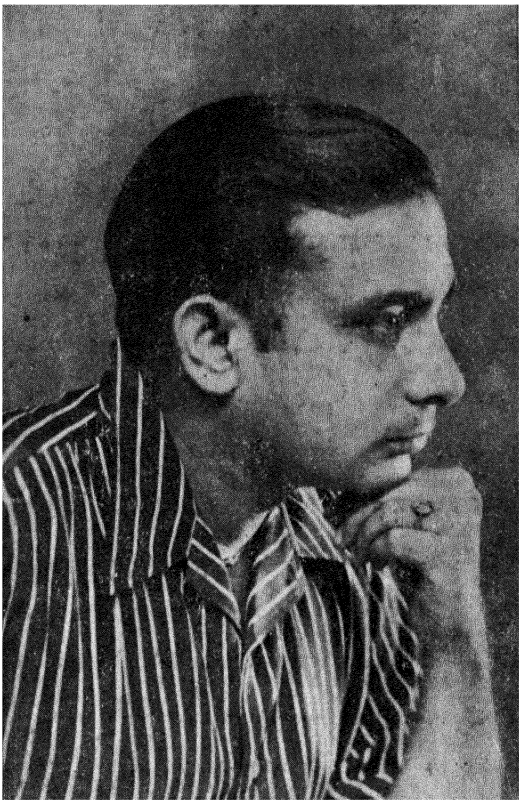

चन्द्रकिशोर जैन

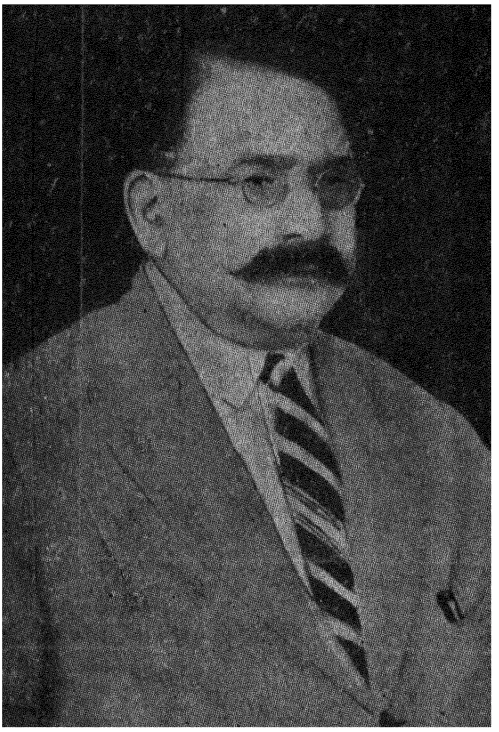

श्री नन्दकिशोर जैन

बी० ए० पी० सी० एस०

परम उदार चरित, पितृचरण

श्रद्धेय श्री नन्दकिशोर जैन महोदय,

बी० ए०, पी० सी० एस०।

— के —

वात्सल्य—वरदान भरे कर कमलों में

अपनी सम्पूर्ण अपूर्णताओं के संस्मरण स्वरूप

यह कृति सादर समर्पित।

आपका ही तो—

छुन्नू

दिशा-दीप

१—विषकन्या	१—२६
२—नेपोलियन के विजय-रहस्य	२७—३६
३—हीरे का टुकड़ा	४१—५२
४—इन्साफ़ (फार्स)	५३—६२
५—अस्पताल का कमरा	६३—७८
६—पहली भेंट	७६—१००
७—क़ानून	१०१—१२६

बन्दनवार

"आइये, आपका परिचय भाई चन्द्रकिशोर जी से कराऊं!" हंसमुख चेहरा, पान से रंगे होठ; नशीली आंखों में लाल डोरे, भरा क़द और बायल का चमचमाता कुरता, जिसके गले पर चांदकट निकली लखनौआ बेल; इस हुलियेमें एक सज्जन बैठे भाभीजी (श्रीमती चन्द्रवती ऋषभसैन जैन) से बातें कर रहे थे। भाभीजी स्वयं कलाकार हैं और फलतः उनके पास विविध श्रेणी के कलाकार आते रहते हैं! पहिली ही झांकी में मेरे मन पर कुछ ऐसी छाप पड़ी कि यह भी कोई कलाकार है और इसका संबंध रंगमंच के साथ है। भाई चन्द्रकिशोर माफ़ करें, मैंने समझा यह कोई ऐक्टर है।

मेरे आते ही भाभीजी ने कहा, "आइये, आपका परिचय भाई चन्द्रकिशोर जी से कराऊं। आप नहटौर के रईस हैं और मेरे निकट संबंधी। आपके कई एकांकी नाटक ब्राडकास्ट हो चुके हैं।" पांच सात मिनट में ही वे मुझ से ऐसे घुलमिल गये, जैसे हम वर्षों से परिचित हों। आज लगभग दो वर्षों के बाद मैं सोच रहा हूं कि उनके संबंध में प्रथम दर्शन पर मेरे मन ने जिस अनुमान की सृष्टि की थी, वह अपने बाहरी रूप में न सही, आन्तरिक रूप में अवश्य ठीक निकला। यही नहीं कि उनका संबंध रंगमंच के साथ है, वे एक सफल एक्टर हैं, आर्टं और म्यूज़िक डायरेक्टर हैं, ड्रामा-राइटर हैं और सच यह है कि खुद एक कैरेक्टर हैं। आइये, मैं भी आप से उनका परिचय कराऊं।

× × × ×

चन्द्रकिशोर ने, अपने ही व्याकरण से विश्व की भाषाओं का अर्थ लगाने वाले नन्हें से मन में, जिस विषय पर जीवन में सबसे पहले विचार किया और अपने ही पैमाने से दुनिया को नापने वाली छोटी-छोटी आंखोंसे अपनी माता (श्रीमती चम्पादेवी जैन) की गोद में बैठे-बैठे सबसे पहले जो कुछ अद्भुत-सा दृश्य देखा, वह नाटक था।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में युक्त प्रान्त में, बिजनौर जिले के प्रसिद्ध "किलावाला" धनी परिवार में, एक ऐसे मानव ने जन्म लिया, जो विज्ञापन के विश्व में मूक होकर भी महान था। वे थे रायबहादुर ला० द्वारकाप्रसाद जैन। अपनी योग्यताके बलपर वे इम्पीरियल सर्विसके उस पद पर (प्रथम गैरिसनभारतीय इक्जीक्युटिव इन्जिनियर) पहुंचे जो तब तो लाट साहबी ही थी, आज भी कुछ कम नहीं है। पिछले युद्ध में उनकी वैज्ञानिक प्रतिभा से प्रभावित हो, भारत सरकार ने उन्हें राजा की उपाधि देने की इच्छा प्रगट की, तो उन्होंने कहा, "यह आदमी की आन्तरिक स्थिति को नहीं सुधारती, उलटे उसे झूठी बाहरी शानशौकत में फंसा देती है, इसलिए मैं क्षमा ही चाहता हूँ।" जीवन भर ये अपनी पेंशन का आधा भाग गरीब विद्यार्थियों की शिक्षा में देते रहे और हजारों रुपया उन्होंने गुप्तदान दिया जिसे जीवन में वे ही जान पाए। अखिल भारतीय जैन और वैश्य कान्फरेन्स ने उन्हें अपना सभापति चुनकर, उनकी प्रतिभा को ही एक सैल्यूट दिया था। उनकी मानवता तो जीवन भर अपनी मूक साधना में ही लीन रही!

उनके घर में जन्मे श्रीनन्दकिशोर जैन। अपने पिता की वसीयत में पाई उन्होंने शान्ति और सरलता एवं परिस्थितियों से उन्होंने ग्रहण की दृढ़ता। बचपन से ही उनकी रुचि में धार्मिकता की पुट रही। उनके पिता की इच्छा थी कि ये बैरिस्टर के रूप में देशव्यापी यश उपार्जन करें, पर यह उनकी रुचि के अनुकूल न था। फलतः बी० ए० पास करके वे अपने पिता के कार्य्य क्षेत्र बंगाल-बिहार में डिप्टी कलक्टर हुए। आप सबसे पहले मुर्शिदाबाद में नियुक्त हुए और जिस सब-डिविजनल-मैजिस्ट्रेट के साथ आप को काम करने का अवसर मिला, वे थे बंगाल के महान् नाटककार श्री डी० एल० राय० महोदय। वे प्रायः श्री नन्दकिशोर जी को अपने बंगला नाटक सुनाया करते और विभिन्न नाटकीय विषयों पर आप से चर्चा किया करते। इससे आपका रुझान नाटक की ओर हुआ और आपने राय महोदय के कई नाटकों में सफल अभिनय भी किया। आप ही के ज्येष्ठ पुत्र हैं श्री चन्द्र-किशोर जैन।

श्री नन्दकिशोर जी, जब मोतीहारी में डिप्टी कलक्टर थे, तब वहां के आफिशियल क्लब के मन्त्री भी थे और आपके बंगले के विशाल कम्पाउंड में अकसर नाटक होते थे। तब चन्द्रकिशोर दो तीन साल के थे। इसीलिए मैं कहता हूँ कि चन्द्रकिशोर ने अपने ही व्याकरण से विश्व की भाषाओं का अर्थ लगाने वाले नन्हे से मन में जिस विषय पर जीवन में सबसे पहले विचार किया और अपने ही पैमाने से दुनिया को नापने वाली छोटी छोटी आंखों से अपनी माता की गोद में बैठे-बैठे सबसे पहले जो कुछ अद्भुत-सा दृश्य देखा, वह नाटक था।

× × × ×

मुजफ्फरपुर के प्रसिद्ध रईस श्री जगन्नाथप्रसाद साहू का घर उन दिनों एक खासा रंगमंच था—वहां अकसर नाटक हुआ करते थे। श्री नन्द-किशोर जी मुजफ्फरपुर बदल कर आये, तो चन्द्रकिशोर का सम्पर्क साहूजी से होना स्वाभाविक ही था। यहां चन्द्रकिशोर के किशोर मन में अभिनय करने की उत्सुकता जागी और उन्होंने जीवन का पहला अभिनय मुजफ्फरपुर हाईस्कूल में खेले गए नाटक "भयंकर भूल" में किया। तब आपकी उम्र १५-१६ साल की थी और आप नाइन्थ में पढ़ते थे। इसके बाद साहू साहब के यहां आपने कई बार पार्ट किया और इस प्रकार आपका दिल खुल गया।

आगे चलकर पटना कालिज में आपने दो नाटकों में अभिनय किया और बहुत सफल रहे। भागलपुर कालिज और पटना ला कालिज एवं विभिन्न स्थानों के क्लबों में आपने जिन खेलों में अभिनय और निर्देशन किया, उनकी सफलता एक रिकार्ड मानी गई। आपकी सफलता से प्रभावित होकर आपके प्रिंसिपल ने एक दिन आपसे कहा, "जैन! तुम किसी फिल्म कम्पनी में चले जाओ। तुम बड़े घर के लड़के हो, (उस समय आपके पिताजी कलक्टर थे) तुम्हारे लिए रुपयों का कोई महत्व नहीं है, इसलिए यदि तुम्हारे पिताजी इससे सहमत न हों, तो मेरी राय है कि तुम भागकर बम्बई चले जाओ। मेरा विश्वास है कि तुम फिल्म में अभिनय की सफलता का एक नया रिकार्ड कायम कर सकोगे।" यह एक विद्वान की सम्मति है।

उन्हीं दिनों भागलपुर में हिन्दू-मुस्लिम दंगा होगया। आप कहीं बाहर

से यात्रा करके आये थे। स्टेशन पर तांगेवाले से आपने कहा, "ऐसे रास्ते से हमें बोर्डिंग पहुंचा दो कि मुसलमानों का मुहल्ला बीच में न पड़े," तो तांगे-वाले ने कहा, "बाबूजी! आपको कौन मारेगा? सब जानते हैं कि आप मर गए तो भागलपुर में ड्रामों का मजा जाता रहेगा।" आपके अभिनय के संबंध में यह जन-साधारण की सम्मति का मर्म-स्पर्शी सार है।

× × × ×

शिक्षा समाप्त कर, एक पार्टनर के रूप में आप मेमनसिंह ज़िले की किशोरगंज सूगरमिल्स में आए और दो वर्ष उसका संचालन किया। इसके बाद आप व्यापारिक अनुभव की दृष्टि से एक व्यापारिक संस्था के प्रान्तीय अध्यक्ष होकर पटना आए और लगभग दो वर्ष उसका संचालन करते रहे। यह आपके जीवन की पहली और सम्भवत: अन्तिम नौकरी थी।

× × × ×

इन वर्षों में आपके नाटकीय जीवन में एक घटना हुई, जिसने उन्हें अभिनेता और निर्देशक से नाटककारके रूपमें परिणत कर दिया। 'सर्चलाइट' के न्यूज एडीटर बड़े भाई श्री गोपालकृष्ण प्रसाद ने एक दिन आपको बंगला का एक नाटक "माटीर घर" हिन्दी में छायानुवाद के लिए दिया। आपके लिए यह नया काम था, पर आपने इसमें बहुत परिश्रम किया। यह परिश्रम इतना सफल हुआ कि आपके जीवन की धारा ही बदल गई।

आपने अपने अनुवाद का नाम रक्खा—प्यास। यह नाटक विहार-प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की सहायता के लिए, उसी के भवन में खेला गया। सम्मेलन के प्रधान मन्त्री श्री ब्रजिनाथजी पांडेय और लेफ्टिनेंट रामेश्वरप्रसाद कुठौतियार ने इस नाटक की सफलता में बहुत भाग लिया और चन्द्रकिशोर को खूब प्रोत्साहन मिला। स्वयं चन्द्रकिशोर ने इसमें विलियन का पार्ट किया था।

पटना के अंग्रेजी दैनिक "इंडियन नेशन" ने इस सफलता का अभिनन्दन करते हुए चन्द्रकिशोर को पटना हिन्दी रंगमंच का एक आधार-स्तंभ (Stalwart) कहा था और हिन्दी-दैनिक "राष्ट्रवाणी" ने "लेखन और अभिनय के इस समानान्तर सौन्दर्य्य" के लिए आपको बधाई दी थी। "अमृत बाजार पत्रिका" के आलोचक ने लिखा था:—

Adopted from Bidyayak Bhattacharji's "Matir-Ghor," a work containing all the fine points of Drama and occupying a place of its own in Bengali literature, it required only an able hand to render the dialogues in Hindi in order to make it a first class play. This task was creditably performed, by Mr. C. K. Jain, B.A., a veteran artist. So well the work has been performed, so fluent and forceful is the language and the dialogue and so rich in the dramatic elements is the version .....that one must thank Mr. Jain, for the service has rendered to the Hindi stage.

अर्थात्"..... नाटयकला के समस्त सुन्दर उपकरणों से सुसज्जित, बंगला साहित्य की विशिष्ट कृति 'माटीर घर' के हिन्दी रूपान्तर के लिये एक समर्थ हाथ की आवश्यकता थी, जो इसे प्रथम श्रेणी का नाटक बना सके। प्रसन्नता की बात है कि यह कार्य्य श्री जैन जैसे सुलझे हुए कलाकार द्वारा सम्पूर्णता से निष्पन्न हुआ। भाषण-सम्वाद इतने सुन्दर प्रवाह एवं ओज से पूर्ण हैं और सम्पूर्ण रूपान्तर इतना मधुर एवं नाटकीय तत्वों से परिपूर्ण है कि श्री जैन को हिन्दी रंगमंच की इस सेवा के लिये बधाई देनी पड़ती है....."

'इण्डियन नेशन' के प्रतिनिधि ने अपनी आलोचना में कहा था—

.....Pyas, as depicted by Mr. Chandra Kishore Jain, has come out in a new shape adding laurels to the main plot. Mr. Jain is an accomplished actor himself & that's why he has been able to do full justice by terating the subject in the most natural manner. Omit one sentence and the whole dialogue is gone. The whole plot is imbued with lucid flow in the dialogues and dramatic element of high order..... ...

अर्थात्—"श्री चन्द्रकिशोर जैन द्वारा चित्रित 'प्यास' ने एक नया ही रूप धारण करके मूले कथा में चार चान्द लगा दिये हैं। श्री जैन स्वयं एक प्रवीण अभिनेता हैं और यही उनकी सफलता का रहस्य है। किसी सम्वाद में से हम एक वाक्य भी निकाल दें तो सारा सम्वाद ही समाप्त हो जाएगा। कथानक के सारे वार्त्तालाप में आईने-सा पारदर्शी प्रवाह और नाट्यकला के उच्च उपकरण उपस्थित हैं.....।"

इस व्यापक प्रशंसा का निश्चय ही लेखक पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। यह अत्यन्त खेद की बात है कि हिन्दी में "समय पर सही प्रोत्साहन" बहुत कम लेखकों को प्राप्त होता है। कुछ की ओर तो हमारे महारथियों का ध्यान ही नहीं जाता और फलस्वरूप वे 'एप्रीसियेशन' की प्यास में घुट कर मर जाते हैं। कुछ ऐसे हैं, जिनकी ओर हमारे महारथियों का इतना अधिक ध्यान चला जाता है कि वे प्रशंसा की गंगा में ऐसी बाढ़ उठा देते हैं कि उगता लेखक उसमें डूबकर ही मर जाता है। इसी अर्थ में मैं कहता हूं हिन्दी में समय पर सही प्रोत्साहन बहुत कम लेखकों को प्राप्त होता है।

× × × ×

सफलता के इस नशे में चन्द्रकिशोर ने एक गजब की चीज़ लिखी 'सिराजुद्दौला !" पर दुनिया इसे न देख पाई—मुंगेर में रिहर्सल होते ही इसे जब्त कर लिया गया। काश ! यह कभी छपे !! इसके नाटकीय कौशल और सम्वादों की तुलना हम आगा हश्र काश्मीरी के नाटकों से आसानी के साथ कर सकते हैं। निश्चय ही इस जब्ती ने नाटककार को उत्साह से भर दिया, उसने कंधे उभारे और दुनिया के नये कोनों में दूर-दूर झांका।

× × × ×

राजा राधिका रमण प्रसादसिंह के प्रसिद्ध उपन्यास 'राम रहीम' को आपने नाटकीय रूप देकर अपनी नाटय-साधना में एक नया परीक्षण किया। दैनिक 'राष्ट्रवाणी' के शब्दों में, "उपन्यासों को नाटक के रूप में परिवर्त्तित करके खेलने का यह प्रयास श्लाघनीय" रहा।

'नवाबी के अन्तिम दिन' आपका ऐतिहासिक नाटक है और 'कंकावती घाट' बंगला से अनूदित अत्यन्त भावपूर्ण, नारी-चरित्र का मर्म-

स्पर्शी चित्रण। दोनों के अभिनय अत्यन्त सफल रहे और कई अधिकारी विद्वानों ने उनकी अत्यन्त प्रशंसा की। खेद है कि सामरिक परिस्थितियों के कारण इनका अभी तक प्रकाशन न हो सका।

इस प्रकार चन्द्रकिशोर एक उत्साही दर्शक से उठ कर, अपने परिश्रम और लगन के कारण एक सफल नाटककार के पद पर आ बैठे। हिन्दी के श्रेष्ठ नाटककारों में उनका क्या स्थान है? इस दिशा में सोचने की मेरी वृत्ति नहीं। हां निश्चय ही मैं कह सकता हूँ कि हिन्दी के श्रेष्ठ नाटककारों में उनका एक स्थान है और जिस गति से वे चल रहे हैं, वह इस स्थान को धीरे धीरे पुष्ट भी करेगी और परिष्कृत भी!

× × × ×

पिताजीने पेंशन ली और बस, उनके साथ चन्द्रकिशोर भी १९४२ में अपनी वंशभूमि नहटौर (बिजनौर यू० पी०) लौट आए। नहटौर, एक छोटा-सा कस्बा और चन्द्रकिशोर, एक बड़े बाप के बेटे। ज़मींदारी का थोड़ा बहुत काम देख-भाल लिया और बस! धीरे-धीरे वे अपने साहित्य क्षेत्र से दूर हो चले। तभी एक दिन चौधरी तेजवन्तसिंह जी त्यागी ने उनके नाटक पढ़ कर कहा, "अरे भाई! तुम रेडियो के लिए एकांकी क्यों नहीं लिखते?"

चन्द्रकिशोर के स्वभाव की यह खूबी है, कि वे कभी कोई पत्र नहीं पढ़ते। इस विषय में ये उन लोगों के साथ हैं, जो अब भी कभी कभी रास्ता रोककर पूछते हैं—क्यों पंडितजी! महात्मा गांधी अब भी ज़िन्दा हैं? इधर उधर की पुस्तकें भी वे नहीं पढ़ते। (यह काम उन्होंने अपने छोटे भाई श्री महावीर किशोर बी० ए० को सौंप दिया है, जो दुनिया के प्रायः सभी लेखकों को कई कई बार चाटे बैठे हैं।) वे शायद सिर्फ उन्हीं पुस्तकों को पढ़ना चाहते हैं, जिनके पन्ने गंगाजल या आबे-ज़मज़म से धुले हुए हों।

उस दिन तक उन्होंने न कोई एकांकी नाटक पढ़ा था और न सुना ही था। फिर एकांकी नाटक कैसे लिखें? पर रेडियो का आकर्षण उन्हें प्रेरणा दे रहा था। उन्होंने अंग्रेजी-बंगला के कुछ एकांकी नाटक पढ़े, उनकी शैली को समझने का प्रयत्न किया और अपना पहला एकांकी नाटक लिखा—'रहनुमा' जो नवम्बर १९४२ में लखनऊ रेडियो से ब्राडकास्ट हुआ। तब आपने 'नींद'

एवं 'रानी' नाम के दो नये एकांकी लिखे और वे भी लखनऊ-दिल्ली से ब्राडकास्ट हुए।

सफलता के इस नये खुमार में उनकी क़लमने एक सृष्टि की—विषकन्या। अजन्ता की चित्रकला-सी भव्य और चिर-नूतन। विषकन्या ऐसी कृति है, जिसे कोई लेखक होशमें नहीं लिख सकता। प्रयत्नों की सीमाके उस पार, सरस्वतीके वरदान सी, जो कभी २ लेखककी क़लम से, ऋषियों के मुख से वेद की ऋचा-सी निकल जाती है और जिसके बाद लेखक अपनी मृत्यु से निश्चिन्त होकर, अतीत के उस सन्त की वाणी में पुकार उठता है, "अब हम अमर भये, न मरेंगे !!" इस पुकार में निश्चय ही उमंगकी उत्ताल लहरी का आवेश अधिक होता है गर्व की हुंकार कम।

आल इंडिया रेडियो के प्रोग्राम अस्टिटैंट, श्री ज्ञानस्वरूप भटनागर की सम्मति में 'विषकन्या' भारत के विभिन्न रेडियो स्टेशनों से ब्राडकास्ट हुए नाटकों में सर्व-श्रेष्ठ है। मेरा विश्वास है कि हिन्दी एकांकी नाटकों के विशाल भंडार में से दस सर्वश्रेष्ट नाटक चुनने हों, तो विषकन्या को उन में स्थान देना अनिवार्य होगा। नारी की विवशता और अजेय प्रतिहिंसा का उसमें ऐसा अद्भुत चित्रण हुआ है कि पढ़ते-पढ़ते पाठक ही नाटकमय हो उठता है। काश, यह कथानक कभी फिल्म के पर्दे पर आये !

नारी-चरित्र के संबन्ध में दूसरी आदर्श कृति है—'पहली भेंट' एक ही एकांकी में नारी का इतना सम्पूर्ण चित्रण मेरे निकट तो कला का एक चमत्कार ही है। इस में नारी के दैवी और आसुरी, दोनों रूपों का चित्रण एक ही झांकी में इतनी सुन्दरता से हुआ है कि पढ़ कर उसे भूलना कठिन है।

'नेपोलियन' में एक विशिष्ट सत्य की अभिव्यक्ति है। महापुरुषों की विजय का आधार केवल उनकी तलवार ही नहीं होती। लेखक ने सम्राट नेपोलियन की विजय का सस्ता स्तुति-गान न करके मानव नेपोलियन के अन्तर में झांकने का प्रयत्न किया है, जो निश्चय ही प्रशंसनीय है।

'इन्साफ' एक साधारण प्रहसन है, हँसी-मज़ाक़ की बात। उसे हम गंभीरता से न लें और नारी के संबन्ध में इसे लेखक की सम्मति न मानें, यही ठीक होगा।

'हीरे का टुकड़ा' में मीर खां भारतीय मूल-चरित्र का प्रतिनिधि होकर हमारे सामने आता है और हमारे भीतर सोती ऊँची भावनाओं को एक उत्तेजना देकर चला जाता है। अपील की दृष्टि से लेखक को उसमें पूरी सफलता मिली है। हमारा आज का सामाजिक जीवन इस तरह की कृतियों की प्रतीक्षा में है, इस में सन्देह नहीं।

'अस्पताल का कमरा' भी एकांकिका की मर्मस्पर्शी कृति है। इस में नारी दैत्य है, नारी ही देवता है। नर के लिये नारी आज केवल बिलास की एक मैशीन मात्र है, इस की यहां एक साथ दो तस्वीरें हैं। यह हमारे मन की कोमल वृत्तियों को गुद गुदाती भी है और कुप्रवृत्तियों पर एक हलकी-सी चोट भी जड़ती है।

'कानून' एक शुद्ध सामाजिक रचना है और आज के समाज-विधान का एक ऐसा चित्र हमारे सामने रखती है कि हम देख पायें कि हमारे चारों ओर किस तरह नर्क पर स्वर्ग की पालिश की हुई है। समाज का यह छिपा कोढ़ हमारे सामने आये, यह आवश्यक भी है और श्रेयस्कर भी।

× × ×

ये नाटक ब्राडकास्ट हुए और लोगों ने सुन लिये। अब यह पुस्तक रूप में छप रहे हैं और लोग इन्हें पढ़ेंगे। सुनने में लोगों को आनन्द आया और निश्चय ही पढ़ने में उससे भी अधिक आनन्द आएगा, पर यहीं एक सैद्धान्तिक प्रश्न मनमें उठता है कि क्या हमारे जीवन में एकांकी का बस यही उपयोग है कि हम उसे पढ़ें और आनन्द लें।

गुलामी और ग़रीबी ने हमारे जीवन को निचोड़ कर रख दिया है, किन्तु यदि हमें इतिहास के पन्नों में ही शेष नहीं रहना है, तो हमें सरसता के उस संस्कृतिक स्रोत में स्नान करना पड़ेगा, जहां चहुंमुखी सजीवता निरन्तर अठखेलियां करती है। एकांकी नाटक उस सांस्कृतिक स्रोत की एक प्रशस्त पगडंडी है। मुहल्ले की कुछ शिक्षित लड़कियां, स्त्रियाँ या किशोर, थोड़े से प्रयत्न में, किसी कोठी के बरामदे में, किसी बड़े से आंगन में, या

ऐसे ही किसी दूसरे स्थान में, किसी भी छुट्टी के दिन एक एकांकी का अभिनय कर, अपने पास-पड़ौस के नीरस वातावरण में सरसता की सृष्टि कर सकते हैं और इस प्रकार आज के मूर्छित जीवन में एक ऐसे अरुणोदय की सूचना दे सकते हैं, जो सामाजिक नवनिर्माण के लिये बहुत ही उपयोगी है।

एकांकी नाटकों के पाठक और लेखक एकांकी के इस कलात्मक उपयोग को समझें और अपनायें, तो यही नहीं कि वे अपना मानदन्ड ऊंचा करेंगे, राष्ट्रके नव-निर्माण में भागीदार भी होंगे।

× × ×

मैंने कहा कि ये नाटक रेडियो के लिये लिखे गये थे। रेडियो रूपक में प्रदर्शनात्मक विवरणकी गुन्जायश नहीं होती, सम्वाद ही उसका बल है। इन नाटकों में भी प्रदर्शन को कम और सम्वाद को अधिक स्थान मिला है, पर इससे इन की अभिनय-शक्ति में कोई अपूर्णता नहीं आ पाई, यह मैं मानता हूँ। स्थान और समय की एकता भी कहीं कहीं खंडित हो गई हैं, पर लेखक ने इसे परिस्थितियों की विवशता में ही ग्रहण किया है।

लेखक को स्टेज का गंभीर अनुभव है और उसने अपने नाटकों में घटना-क्रम की नाटकीयता बनाये रखने में इसी कारण अच्छी सफलता प्राप्त की है। सम्वादों की भाषा में चुस्ती भी है और चुलबुलापन भी। अभिनय के समय उच्चारण की सुविधा और पूर्णता का पूरा ध्यान लेखक ने रक्खा है। प्रश्नों के साथ उत्तरों का मनोवैज्ञानिक सन्तुलन ऐसा बनाये रखने में लेखक ने निश्चय ही बहुत परिश्रम किया है और परिस्थितियों के धरातल को भी प्रायः सर्वत्र ही पारसीपन से बचाकर, संस्कृति की स्वाभाविकता से समतल रखने की सफल चेष्टा की है। मैंने स्वयं देखा है कि लेखक अपने एक एक शब्द के लिये सतर्क रहा है—एक सावधान कवि की भाँति उच्चारण, ध्वनि और मनस्थितियों के प्रवाह का ध्यान रखकर अपने एक एक शब्द का चुनाव किया है।

'पहली भेंट' (पृष्ठ ६७) में एक जगह चित्रलेखा कहती है "नहीं जानती महारानी!" प्रूफ देखते समय मैंने कहा—इसमें "मैं" और बढ़ा

दो, तो तुरन्त आप बोले—जैसी आज्ञा, पर "मैं नहीं जानती महारानी !" में एक खीज-सी है और सिर्फ "नहीं जानती महारानी !" में सहानुभूति। रानीकी वर्तमान परिस्थितियों में उसे सहानुभूति ही मिलनी चाहिये।

मैं समझता हूं, बिना विचार तुरन्त दिये इस उत्तर में चन्द्र किशोर के लेखक की पूरी तस्वीर है। इस तस्वीर में उसकी मनोवैज्ञानिकताके रङ्ग भी हैं और शब्द चयन में बरती सतर्कता की रेखायें भी। साहित्य-सरकार उन्हें (क्योंकि भारत-सरकार में तो ऐसे स्वतंत्र आदमी की पूछ ही कहां ? 'शब्दों के कारीगर' की उपाधि दे तो यह उचित ही होगा।

× × ×

चंद्रकिशोर एक ज़िन्दादिल आदमी हैं, पर उनकी ज़िन्दादिली पौरुष की उत्तप्त पगडंडियों पर ताण्डव नहीं करती, स्त्रीत्व की सरल साधना के आंगन में ही थिरकती है। यही कारण है कि दूसरे का दुःख उन्हें प्रभावित करता है और सुख उल्लसित। उनकी आंखें भी हँसती हैं और होठ भी—उस हंसी में इतना मिठास है कि हंसी की बात न समझी जाए, सचमुच उनके मिलन में प्रेयसी के मिलन का सुखानुभव होता है। बातचीत में तल्लीनता की एक ऐसी परिधि वे बना देते हैं कि हम उस समय कहीं बाहर नहीं झांक पाते।

इस ज़िन्दादिली ने उन्हें "जीवन का चरम विकास" दिया है—आवारगी, पर क्या यह उपेक्षणीय है ? मैं इस पर कैसे 'हां कह सकता' हूं, जब कि जानता हूँ कि इसीने उन्हें जीवन का अध्येता बनाया है और यह अध्ययन इतना गंभीर एवं व्यवस्थित है कि हम हिन्दू विश्व विद्यालय के डा० बी०एल० आजेय और प्रयाग विश्व विद्यालयके डा० रामकुमार वर्मा से उनका परिचय 'जीवन का रिसर्च स्कालर' कह कर करासकते हैं।

प्रसन्नता की बात है कि अपना यह अध्ययन वे अपनी नई पुस्तक 'राह चलते' में शीघ्र ही हिंदी भंडार को भेंट कर रहे हैं। उसे लिखकर न केवल चन्द्र किशोर ही यशस्वी होंगे, हिंदी की संस्मरण-कला के इतिहास में यह एक नया अध्याय एवं उनके स्वयं एक कैरेक्टर होने का प्रभाव होगा।

श्री नरोत्तम प्रसाद नागर की प्रेरणा पर चन्द्रकिशोर ने कुछ कहानियांभी लिखी हैं और मेरे कहनेसे कुछ दिन 'शान्ति'का सम्पादन भी किया है, पर एक सम्पादक या कहानीकार के रूप में उन्हें कसौटी पर रखने का समय अभी नहीं आया। हां, इस आशा के लिये निश्चय ही यह उपयुक्त अवसर है कि उनकी साधन-सम्पन्नता और अथाह हिन्दी प्रेम, समन्वित हो, उनके द्वारा ऐसी सृष्टियां करायेंगे कि उनसे न केवल हमारी भाषा की श्रीवृद्धि ही होगी, किन्तु बल भी बढ़ेगा।

विकास लिमिटेड
सहारनपुर यू० पी०

कन्हैया लाल मिश्र "प्रभाकर"
(सम्पादक 'विकास' एवं 'शान्ति')

विष-कन्या

दिसम्बर १९४३

विष-कन्या की कुछ भूलें:—

(क) पृष्ठ ११ का अन्तिम सम्वाद कृपया इस प्रकार पढ़ें—

वामदेव—तुम मुझे पथ-भ्रष्ट कर रही हो वासन्ती ! मैंने कठोर लक्ष्य की प्राप्ति के लिये ही कठोर तप की शरण ली है। तुम मेरा व्रत तोड़ रही हो।

वासन्ती—(हँस कर) तुम्हारा व्रत तोड़ रही हूँ ? अच्छा, तो जाओ गुरुदेव के पास। वही तुम्हारी शंका का निवारण होगा।

(ख) पृष्ठ १६ की पंक्ति १०-१२ में "विपिन" के स्थान पर "क्षितिज" पढ़ें।

(ग) पृष्ठ १८ की १, २ और ६ पंक्ति में "पुरुष" के स्थान पर "मनुष्य" पढ़ें।

विष-कन्या

स्थान—विपिन मध्य एक आश्रम।

समय—प्रातःकाल।

[लावण्यमयी आश्रम-कन्या वासन्ती ने अपनी कुटिया के एक कोने में मूर्ति स्थापित कर रक्खी है। वह उस मूर्ति के समक्ष तन्मय हो भजन गारही है। उसका मुरझाया मुख किसी चिन्ता में अभिभूत स्पष्ट रूप से बता रहा है कि वह बहुत चंचल है भजन समाप्त होते ही उसकी संगिनी कल्याणी ने प्रवेश किया। उसकी वयस २२ साल की होगी। वह वासन्ती से दो तीन साल बड़ी है वह भी सुन्दरी है। दबे पैर आकर वह वासंती के पीछे खड़ी हो जाती है और भजन समाप्त होते ही अपने दोनों हाथों से वासन्ती की दोनों आंखें बन्द कर लेती है]

वासन्ती—कौन ?

कल्याणी—बताओ कौन ?

वासन्ती—कल्याणी !

कल्याणी—(हंसकर दौड़ती हुई) हां, कल्याणी ही हूँ। क्या पूजा होरही है सांवरी ?

वासन्ती—(दीर्घ श्वास) हां, पूजा ही कर रही थी।

कल्याणी—तब तो यहां आकर तुम्हारी पूजा में मैंने बहुत विघ्न डाला ?

वासन्ती—नहीं कल्याणी, किसी के आने से मेरी पूजा में विघ्न नहीं पड़ सकता।

कल्याणी—और कैसे विघ्न पड़ता है ? अभी-अभी तुम तन्मय होकर आंखें बन्द किये अपने भजन में लीन थी और मेरे आते ही रुक गई।

वासन्ती—शरीर और उसके अवयवों के रुकने से मन की पूजा नहीं रुका करती कल्याणी ! अब भी मेरा हृदय तन्मय हो भगवान के ध्यान में नाच गा रहा है।

कल्याणी—क्या तुम्हारा शरीर मन से अलग है ?

वासन्ती—हां कल्याणी, किन्तु तुम इसे नहीं समझ सकोगी, उसका अनुभव अकेली मैं ही कर सकती हूँ; क्योंकि मुझे ही अपने मन को शरीर से बहुत दूर रखना पड़ता है। और यह मैं अपने मन को भुलावे में डालकर करती हूँ।

कल्याणी—क्या पूजा से ?

वासन्ती—हां, पूजा ही मेरे मन का सबसे बड़ा भुलावा है। मेरी पूजा एक मीठा नशा है, जिसे जीवन में प्रति-पल मुझे बरबस पीना पड़ता है, जिससे मेरी इच्छायें पड़ी सोती रहें।

कल्याणी—किन्तु गुरुदेव को तो तुम्हारी पूजा और लगन पर बहुत अभिमान है वासन्ती !

वासन्ती—यह एक दूसरा भुलावा है। गुरुदेव को मेरी पूजा और लगन पर नहीं, खुद अपने पर अभिमान है।

कल्याणी—तुम क्या कह रही हो वासन्ती ? गुरुदेव सांसारिक इच्छाओं से परे हैं, उनमें तो किसी बात का भी अभिमान छू तक नहीं गया। उनके आदर्श.....

वासन्ती—आदर्श अन्धा होता है और आदर्श पाने की कोशिश एक निरर्थक अनुसंधान है। जिसे हम पा नहीं सकते उसकी इच्छा ही क्यों करें, क्यों उसकी टोह में अपनी जिन्दगी बर्बाद करें? और जो हम प्राप्त कर सकते हैं उसका पूर्ण रूप से उपभोग क्यों न करें? बोलो।

कल्याणी—तुम आदर्श की अवहेलना नहीं कर सकती बहन! हमारे आदर्शों पर ही तो दुनिया ठहरी हुई है, आदर्श ही तो जीवन-पथ पर आगे बढ़ने की शक्ति देता है, आदर्श ही तो हमारी राह को प्रेरणा के प्रकाश से आलोकित करता है।

वासन्ती—आदर्श जीवन में कभी न थमने वाली हलचल है। काश, हम आदर्श के ये सपने न देखा करते और आदर्शहीन जीवन बिता सकते! तब हमारी जिन्दगी में सुख और सन्तोष का ही राज्य रहता।

कल्याणी—किन्तु तुमसे कौन अधिक सुखी है? गुरुदेव कहते हैं तुमने सांसारिक वासनाओं को जीत लिया है। तुम एक आदर्श नारी हो, जिसे पुरुष की इच्छा ही नहीं।

वासन्ती—आदर्श नारी जिसे पुरुषकी इच्छा ही नहीं? (अट्टहास कर उठती है)

कल्याणी—तुम हंस क्यों रही हो वासन्ती, क्या यह सच नहीं?

वासन्ती—हां, सच है, किन्तु.....

कल्याणी—किन्तु क्या?

वासन्ती—मेरी इच्छा और चाह का कोई मोल नहीं. मेरे समीप इसका सवाल ही खड़ा नहीं होता। सच तो यह है कि मेरे पास कोई पुरुष आ ही नहीं सकता और अगर भूला भटका आ भी जाये, तो मैं उससे प्यार नहीं कर सकती।

कल्याणी—(साश्चर्य) कोई पुरुष नहीं आ सकता? कारण?

वासन्ती—गुरुदेव की महानुकम्पा।

कल्याणी—तब तो तुम्हें गुरुदेव का कृतज्ञ होना चाहिये कि उन्होंने तुम्हारा रास्ता ही निर्विघ्न बना दिया है। तुम एकाग्रचित्त हो लगन और भक्ति से अपने को भगवान् में लीन कर सकती हो।

वासन्ती—(दीर्घ श्वास) हां, भगवान् की भक्ति में तो अपने को लीन करना ही पड़ता है कल्याणी, किन्तु जानती हो मैं भगवान् की पूजा क्यों किया करती हूँ ?

कल्याणी—इसलिये कि तुम में भगवान् की सच्ची भक्ति है।

वासन्ती—इसका कारण कुछ और ही है कल्याणी !

कल्याणी—क्या ?

वासन्ती—मेरी पूजा का भार पाषाण ही सम्हाल सकता है, मनुष्य नहीं। जब कभी एकान्त रात्रि में अकेली पड़ी सोचती-सोचती मैं थक जाती हूँ, तो मैं इस पाषाण-मूर्त्ति से लड़ने आती हूँ।

कल्याणी—लड़ने आती हो ?

वासन्ती—हां, मैं इससे पूछती हूँ कि तुमने अच्छा ही किया जो मनुष्य को हृदय दिया और उस हृदय में अरमान दिये किन्तु साथ ही छाती में इतनी भयानक तृष्णा और हाहाकार क्यों भर दिया ?

कल्याणी—तुम्हें क्या उत्तर मिलता है ?

वासन्ती—पाषाण भी कहीं पिघला है कल्याणी ! मैं रो-धोकर अपनी शय्या पर वापस चली जाती हूँ।

कल्याणी—उसके बाद ?

वासन्ती—उसके बाद जब मेरे अरमान मेरे हृदय को चीरकर बाहर निकल आना चाहते हैं और हृदय में समुद्र का तूफान उमड़ने लगता है, तो फिर मैं उन्हें उसी पाषाण की मूर्ति के चरणों पर पटक कर शान्ति चाहती हूँ। (कुछ सोचकर) यह सब गुरुदेव की आसीस का फल है कि कोई पुरुष मेरे पास नहीं आ सकता !

कल्याणी—क्यों, पुरुष का स्त्री के पास आना तो हमेशा स्वाभाविक है।

वासन्ती—अच्छा, तुम्हें याद होगा एक दिन मैंने एक मृगशावक को उठाकर प्यार से चूम लिया था। जानती हो क्या परिणाम हुआ ?

कल्याणी—क्या ?

वासन्ती—वह फौरन ही तड़फ कर मर गया !

कल्याणी—(आश्चर्य से) ऐं ! यह कैसे हुआ ?

वासन्ती—यह एक रहस्य है और उस का भेद गुरुदेव अच्छी तरह जानते हैं। उन्होंने उस दिन उस हिरन के बच्चे की कहानी सबको बताकर कहा था कि मेरे चारों ओर मृत्यु की काली रेखायें खिंची हुई हैं। उन रेखाओं को उल्लंघन करने का अर्थ है, मृत्यु से होड़। मेरे पास आने का मतलब है वासना की ज्वाला और उस ज्वाला की शान्ति कोई मुझे पाकर नहीं कर सकता। चाहते हुए भी मैं किसी से प्रेम नहीं कर सकती !

कल्याणी—ऐसा क्यों वासन्ती ?

वासन्ती—गुरुदेव कहते हैं कि मैं सांसारिक वासनाओं के ऊपर उठ चुकी हूँ। मुझे वासना की नज़र से देखना घोर पाप है। (व्यंगपूर्ण हास्य के साथ) मैं एक आदर्श नारी हूँ जिसे पुरुष की इच्छा ही नहीं।

कल्याणी—किन्तु क्या यह संभव है ?

वासन्ती—इसे संभव करने को ही तो उन्होंने मेरे और पुरुष के बीच मृत्यु की काली रेखायें खींचदी हैं। वे कहते हैं कि मेरा संसर्ग यम का आवाहन है, मेरी प्यास मृत्यु की प्यास है। और जानती हो कल्याणी ! उस मृत्यु की माधवी को मेरे जीवन ने हंस-हंस कर पिया है, रोया है, गाया है और पिया है, नाचा है और पिया है। अब मुझे नहीं मालूम कि हृदय में कौनसा ज्वार-भाटा लिये मैं किससे मिलने एक सरिता की तरह कहां बही जा रही हूँ।

कल्याणी—आश्चर्य, महान आश्चर्य !

वासन्ती—छोड़ो इन बातों को। अच्छा, तुमने उस नये ब्रह्मचारी को देखा है, जिसने कुछ दिन हुए यहां दीक्षा ली है ?

कल्याणी—वामदेव ?

वासन्ती—हां वामदेव। परसो मैंने उसे दूर से देखा था ! संध्या समय वह धीरे धीरे कुछ सोचता हुआ आश्रम की तरफ जारहा था और मैं अपनी कुटिया की तरफ आ रही थी। मैं मुड़-मुड़ कर उसकी ओर देख रही थी, किन्तु वह अपने ही ध्यान में मस्त था। अकस्मात् मेरे पैर में एक बहुत बड़ा कांटा चुभ गया और मैं चिल्ला उठी।

कल्याणी—फिर क्या हुआ ?

वासन्ती—मेरी चीत्कार सुन मेरे पास वामदेव दौड़ा आया और मेरे बिना कुछ कहे ही उसने मेरी एड़ी उठाकर कांटा खींच लिया। उस समय मेरी नस-नस में एक अजीब सी लहर दौड़ गई, मेरा सारा शरीर कांप उठा और मैं अचेत सी हो गई।

कल्याणी—तुम्हें ज़हरीला कांटा चुभा होगा।

वासन्ती—सम्भव है, किन्तु मुझे जब होश आया तो मैं अपनी कुटिया में थी।

कल्याणी—अपनी कुटिया में ?

वासन्ती—हां वामदेव मुझे वहां पहुंचा आया था।

कल्याणी—वह तुम्हारी कुटिया में कैसे गया ? क्या उसे गुरुदेव का भय नहीं था ?

वासन्ती—वह उसके बाद भी मेरे पास दो बार आया, किन्तु अब तो गुरुदेव की आज्ञानुसार वह बिना अन्नजल के अपनी कुटिया में अकेला बैठा हुआ प्रायश्चित्त कर रहा है।

कल्याणी—और तुम ?

वासन्ती—मैं उस दिन से उस कटीले रास्ते पर बार-बार घूम रही हूँ, किन्तु वैसा कांटा उसके बाद मेरे चुभा ही नहीं। कोई वैसा कांटा मुझे फिर चुभ जाए, तो मैं उससे अपना सारा शरीर छेद डालूं।

कल्याणी—किन्तु तुम दुःख और दर्द की इच्छा क्यों करती हो ?

वासन्ती—मुझे तो अब चराचर में चारों ओर वेदना ही वेदना दीख रही है। यह बेकल समीर, ये पक्षीगण, ये आंसू बहाने वाले मेघ, वेदना के मारे ही तो फिर रहे हैं। यदि वेदना न होती, तो शायद सृष्टि ही ठहर जाती। मैं अब उसी वेदना को ढूंढ रही हूँ कल्याणी!

कल्याणी—नहीं वासन्ती, सुख और शांति ही मानव जीवन की चरम आकांक्षा है। तुम्हें उनकी ही कोशिश करनी चाहिये।

वासन्ती—सुख और शांति की भी एक सीमा होती है। उस सीमा तक पहुंच जाने के बाद अनायास ही मनुष्य के हृदय में दुःख और दर्द की चाह होने लगती है। उसके बिना जीवन अधूरा मालूम होने लगता है। मुझे भी अब अपना जीवन अधूरा मालूम होने लगा है

क्योंकि उसमें दुःख नहीं है, दर्द नहीं है। यह मेरे जीवन का नव-अनुभव है। अब तक मेरे जीवन में सुख और शांति का ही राज्य रहा है, पर यही शांति अब मुझे अशान्त करने लगी है।

कल्याणी—क्या यह तुम्हारी हार्दिक आकांक्षा है वासन्ती ?

वासन्ती—हां, अब तो केवल एक ही आकांक्षा रह गई है कि कहीं ज्वाला के देश में जा बसूं, जहां परवाने दीपक को हर घड़ी बन्दी कर, सिर धुन-धुन ज्वाला से खेल रहे हों। मैं यही चाहती हूँ कि मेरा जीवन भी केवल जलने का वरदान पाकर प्रतिपल जलता रहे और मैं ..... [कहते-कहते उत्तेजित हो हांफने लगती है]

कल्याणी—ऐं, यह तुममें अकस्मात कैसा परिवर्तन होने लगा वासन्ती ? मस्तक की नसें तनी जारही हैं तुम्हारा मुख पीला पड़ता जा रहा है। (वासन्ती विह्वल हो बैठ जाती है और उसका श्वास तीक्ष्ण हो जाता है। कल्याणी विचलित हो उठती है) क्या होगया तुम्हें ? बोलो वासन्ती, बोलो।

वासन्ती—मुझे उसी तड़प और वेदना की फिर प्रबल इच्छा हो उठी है। मेरा शरीर ऐंठा जारहा है, मेरा रक्त स्रोत बन्द हुआ जाता है। कल्याणी, मेरी औषधि.....जल्दी.....(गिर पड़ती है)

कल्याणी—(विचलित हो) कहां है तुम्हारी औषधि ?

वासन्ती—(उंगली से संकेत करती हुई) वहां, उस सुराही में, जल्दी करो।

(कल्याणी संकेतानुसार सुराही उठाकर पास लाती है)

कल्याणी—यह ?

वासन्ती—हां।

कल्याणी—कितनी औषधि दूं ?

वासन्ती—वह पात्र आधा भरदो।

कल्याणी—(तथाकरण) लो पी लो।

(वासन्ती एक घूंट में ही सारी औषधि पी जाती है। कल्याणी आंचल से हवा करती है)

कल्याणी—कैसी तबियत है अब ?

वासन्ती—अब धड़कन कम हुई, हलचल मिट चली। अब मैं शान्ति अनुभव कर रही हूँ।

कल्याणी—यह कैसी दवा है वासन्ती ?

वासन्ती—गुरुदेव की प्रदान की हुई। मैं बचपन से ही उसे पीती आरही हूं। उन्होंने मुझ से कहा है कि जब कभी मेरे हृदय में ऐसी हलचल उठा करे तो मैं उसे अधिक मात्रा में पी लिया करूं। उसे पीकर मेरी इच्छायें शान्त हो जाती हैं। मेरे शरीर और मन में शान्ति सी छाने लगती है। कुछ देर के बाद मुझे हल्की मूर्छा सी छा जाती है और मैं गहरी नींद में सो जाती हूं। (कुछ देर बाद) मुझे वही मूर्छा सी आरही है कल्याणी। मुझे मेरी शय्या तक पहुंचा दो।

कल्याणी—आओ चलो।

[वासन्ती का हाथ पकड़कर कल्याणी ले जाती है और फिर फौरन ही वापिस आती है। सोचते-सोचते वह उस औषधि की सुराही को एक टक देखती रहती है। उसे हाथों में उठा लेती है और पास की एक चौकी पर बैठ कर कुछ सोचने लगती है]

क्या इच्छायें शांत हो सकती हैं ? मेरे मन में वामदेव के लिए जो वासना जाग उठी है, क्या वह इस दवा से सचमुच बुझ जायेगी ? तो क्या मैं भी वासन्ती की दवा पीलूं ? उसीने तो कहा था कि उसके पीने से इच्छायें शान्त हो जाती हैं। तो लाओ, मैं भी अपनी वासना से क्यों न मुक्ति पा लूं ?

[पात्र भर कर हाथ में लेती है] अभिलाषा पल्लव में खिले हुए आशा कुसुम ! तुम सो जाओ। मैं तुम्हें आज विदा कर रही हूँ। इच्छाओं, तुम शान्त हो जाओ। यह गुरुदेव की औषधि है।

[पीकर विह्वल हो उठती है] यह क्या ?

[अशान्त होकर] अग्नि, भयानक अग्नि, ओफ ! [चीत्कार करके] वासन्ती ! दौड़ो, बचाओ, मेरे शरीर में आग लग रही है। दौड़ो वासन्ती ! जल्दी करो।

[वासन्ती दौडी आती है और गिरती कल्याणी को सम्हालती है]

कल्याणी—(अपने हाथ से हृदय सहलाती हुई) ओफ, वासन्ती ! अपनी वासना शान्त करने के लिए मैंने तुम्हारी दवा पी है, पर मेरी रगों में तो आग-सी लग रही है, मैं मर रही हूँ वासन्ती ! मुझे बचाओ।

[गिर पड़ती है, वासन्ती उद्विग्न हो उठती है]

वासन्ती—कौनसी दवा तुमने पी, कल्याणी ?

कल्याणी—(उंगली से संकेत कर) उस सुराही वाली। वासन्ती, मैं मरी, मेरे प्राण निकले, मैं ..... [मृत्यु]

वासन्ती—मेरी दवा पीने से तुम मर रही हो कल्याणी ? निरुत्तर देखकर उसे हिलाती और फिर जोर से रो पड़ती है। कल्याणी, कल्याणी !

[ब्रह्मचारी वामदेव ने तभी उस कुटिया में प्रवेश किया। वह गौरवर्ण और २४ वर्ष का सुन्दर युवक है। वह बहुत कम बोलता है और यदि बोलता है तो सोचकर]

वामदेव—क्या हुआ वासन्ती ? तुम क्यों रो रही हो ? (कल्याणी को देखकर) और कल्याणी को क्या हुआ ?

वासन्ती—उसकी देह में आग-सी लग रही है, वह मर रही है वामदेव !

[वामदेव कल्याणी की नाड़ी देखता है]

वामदेव—कल्याणी मर नहीं रही है वासन्ती, वह मर चुकी।

वासन्ती—ऐसा न कहो वामदेव ! कल्याणी नहीं मर सकती। उसे अकस्मात् क्या होगया। (कल्याणी के पास जाकर) कहती थी, उसने मेरी औषधि पी ली है ! (रो पड़ती है)

वामदेव—तुम्हारी औषधि ?

वासन्ती—हां, मेरी औषधि पीकर ही तो उसकी यह दशा हुई है।

वामदेव—देखूं तो कहां ह तुम्हारी औषधि ?

वासन्ती—उस सुराही में।

वामदेव—(उठाकर सूंघता है) वासन्ती, यह तुम्हारी दवा है। यह तो विष है।

वासन्ती—(आश्चर्य से) क्या कहा विष ?

वामदेव—हां. भयंकर विष।

वासन्ती—(विचलित हो) तो आज तक वर्षों से मैं जिसे अमृत समझ पीती आई हूं, वह विष है ? वामदेव, विष ? किन्तु, मैं क्यों विष पीती रही हूँ ? ना, ना, मैं तो गुरुदेव की दी हुई औषधि पी रही हूं वामदेव !

वामदेव—नहीं वासन्ती, यह तो भयंकर विष है।

वासन्ती—फिर गुरुदेव मुझे बाल्यकाल ही से विष पिलाते आरहे हैं ? किन्तु क्यों ? क्यों वामदेव, तुम उत्तर दो, बोलते क्यों नहीं। कल्याणी के शव की तरह मेरी आत्मा भी पुकार कर पूछ रही है कि गुरूदेव मुझे क्यों विष पिलाते आरहे हैं। मैंने क्या बिगाड़ा था उनका ! (रोती २ गिर पड़ती है।)

वामदेव—चलो गुरूदेव के पास। हम उनसे ही इसका कारण पूछेंगे।

वासन्ती—तुम क्या मेरे लिये गुरूदेव के पास चलोगे। तुम्हें उनका डर नहीं ? क्या तुम्हारे प्रायश्चित्त की अवधि समाप्त हो गई ?

वामदेव—नहीं।

वासन्ती—फिर तुम यहां कैसे आये ? मालूम है इस बार गुरुदेव तुम्हें और भी कठिन दण्ड देंगे।

वामदेव—मैं उसे भुगत लूंगा किन्तु उस समय मुझे आना पड़ा। तुम रो जो रहीं थी वासन्ती ? आओ, मेरे गुरुदेव के पास चलो।

[वामदेव हाथ पकड़ कर उसे उठाता है वह उठ कर अपनी एड़ी देखने लगती है]

वासन्ती—ओफ़ !

वामदेव—क्यों वासन्ती ? तुम अपनी एड़ी क्यों देख रही हो ?

वासन्ती—मै देख रही थी कहीं मुझे फिर कांटा तो नहीं चुभ गया।

वामदेव—कांटा ! यहां कुटिया में ?

वासन्ती—उस दिन जब मेरे कांटा चुभ गया था और तुमने मेरी एड़ी उठाकर खींच लिया था, तो मुझे सारे शरीर में हल्की-हल्की पीड़ा और सिहरन का अनुभव हुवा था। आहा, कितनी मीठी थी वह कसक ? आज अभी तुमने मुझे फिर पकड़ कर उठाया, तो मुझे उसी सिहरन

का आभास मिला। मैं देख रही थी कि कहीं फिर वही कांटा तो नहीं चुभ गया। वामदेव। उस दिन से मैं उसी कांटे को ढूंढ रही हूँ।

वामदेव—मेरे छूने से तुम्हे कांटे-कीसी पीड़ा मालूम होती है; तब तुम्हें मुझसे बड़ा कष्ट मिलता है वासन्ती!

वासन्ती—मैं चाहती हूँ वह पीड़ा मेरी नस-नस में समा जाए और.....
(आगे बढ़ती है)

वामदेव—(पीछे हटकर) वासन्ती ?

वासन्ती—वामदेव ?

वामदेव—वासन्ती ! मैं ब्रह्मचारी हूँ।

वासन्ती—क्या ब्रह्मचारी मनुष्य नहीं होता ?

वामदेव—होता है, किन्तु पत्थर का।

वासन्ती—और मैं तो पत्थर की ही पूजा किया करती हूँ, वामदेव।

वामदेव—तुम जिस पत्थर की पूजा करती हो उसमें भगवान का वास है किंतु मेरे हृदय के किसी कोने में वासना पड़ी सो रही है और मैं उसे जगाना नहीं चाहता।

वासन्ती—उसे जगाने का यत्न नहीं करना पड़ता है वामदेव, वह सदा जागी रहती है। यों कहो तुम उसे सुलाना चाहते हो।

वामदेव—यही सही ! तो मैं उसे सुलाने की ही कोशिश करना चाहता हूँ।

वासन्ती—उसके सुलाने के अर्थ हैं मृत्यु। कल्याणी ने भी अपनी इच्छाओं को सुलाना चाहा था और अब उसका शव पड़ा हुआ उसकी कोशिशों का उपहास कर रहा है। तुम कल्याणी के शव से उपदेश लो वामदेव।

वामदेव—तुम मुझे पथ भ्रष्ट कर रही हो वासन्ती। मैंने कठोर ~~पथ का तप करने के लिये~~ ही कठोर तप की शरण ली है।

वासन्ती—~~तुम मेरा व्रत तोड़ सकते हो।~~ (हँसकर)

वामदेव—अच्छा आओ गुरुदेव के पास। वहीं तुम्हारी शंका का निवारण होगा।

[वामदेव ने आकर्षित हो तीव्रदृष्टि से वासन्ती की ओर देखा और फिर तेजी से कुटिया के बाहर होगया। वासन्ती उस राह की ओर देखती रही।]

पट—परिवर्तन

स्थान—आश्रम में एक कुटिया के बाहर।

[एक सन्यासी बैठा कुछ श्लोक पढ़ रहा है। वामदेव पास आकर कुछ क्षण खड़ा रहता है किन्तु सन्यासी को अपनी ओर आकर्षित न देख सामने आजाता है]

वामदेव—गुरुदेव प्रणाम।

सन्यासी—कौन वामदेव, तुम यहां? तुम्हें मैंने तीन मास तक अपनी कुटिया में अकेले बैठकर योगाभ्यास करने का आदेश दिया था। आज पहले दिन ही मैं तुम्हें कुटिया के बाहर देख रहा हूँ।

वामदेव—मैं एक शंका समाधान के लिए आया हूँ।

सन्यासी—कैसी शंका?

वामदेव—क्या इच्छाओं की शान्ति हो सकती है?

सन्यासी—हां।

वामदेव—क्या इच्छाओं की शांति का अर्थ मृत्यु नहीं है?

सन्यासी—नहीं, इच्छाओं की शान्ति का अर्थ है मुक्ति।

वामदेव—क्या मुक्ति संसार में मृत्यु का ही दूसरा नाम नहीं है?

सन्यासी—तुम्हें क्या होगया है वामदेव? तुम भटक रहे हो। मुक्ति आत्मा की होती है और मृत्यु शरीर की। आत्मा मुक्ति के लिए व्याकुल रहती है और शरीर वासना की खोज में भटकता रहता है।

वामदेव—क्या शरीर की इच्छाओं पर आत्मा का कोई प्रभाव नहीं! आत्मा तो शरीर के परे कोई वस्तु नहीं होती गुरुदेव! शरीर तो आत्मा के इशारे पर ही सारे काम करता है। आपने ही तो कहा था कि उसका अपना अस्तित्व नहीं होता।

सन्यासी—परन्तु तुम यह सब क्यों पूछ रहे हो वामदेव? तुम्हारे मन में ऐसी हलचल क्यों?

वामदेव—समाधि में अब मेरा मन नहीं लगता। जब मैं आंखें बन्द कर ध्यानस्थ होना चाहता हूँ, तो न जाने, कौन उन्हें बरबस खोल जाया करता है। निराकार अब मेरे लिये साकार का रूप धारण कर रहा है गुरुदेव !

सन्यासी—समाधि में कौन तुम्हारी आंखें खोल जाया करता है और कौन तुम्हारे हृदय में निराकार की जगह ले रहा है वामदेव ?

वामदेव—वासन्ती।

सन्यासी—वासन्ती ! इस आश्रम की आश्रिता वासन्ती ?

वामदेव—हां, गुरुदेव !

सन्यासी—वामदेव तुम ब्रह्मचारी हो।

वामदेव—क्या ब्रह्मचारी मनुष्य नहीं होता गुरुदेव !

सन्यासी—होता है, किन्तु पत्थर का। उसके जीवन में एक आदर्श होता है और उसे पाने के लिए ही वह अपना जीवन बिताता है।

वामदेव—मुझे अब आपके आदर्शों में विश्वास नहीं रहा। आदर्श की खोज में भटकना, मेरे विचार में, जीवन नष्ट करना है। मैं आदर्शहीन साधारण जन समुदाय को, जंगल में तपस्या और संयम में तपते हुए योगियों से अधिक सुखी पाता हूँ।

सन्यासी—सांसारिक भोगों में लिप्त भोगियों का और तपस्वियों का एक लक्ष्य नहीं है वामदेव ! तुम्हारा कर्तव्य बहुत कठोर है। वे अपना कर्तव्य कर रहे हैं, तुम अपना करो।

वामदेव—हममें और उनमें आखिर क्या अन्तर है गुरुदेव !

सन्यासी—संसार एक नाटक है। उसके निर्माताने इसमें सब के लिये अलग-अलग पात्र चुन रक्खे हैं। यदि वह किसी को भोगी और तुम्हें सन्यासी बनाता है, तो तुम्हें प्रश्न करने का अधिकार नहीं, अपना अभिनय सफलता पूर्वक करो।

वामदेव—तब तो यही अच्छा है कि भोगी सारे सुख भोगें, हत्यारा हत्या करे, दुराचारिणी अपराध पर अपराध करती रहे और बेचारा सन्यासी तप करता-करता मिटजाए और फिर उस अभिनयके बारेमें

सब का मोल समान ही हो। उस निर्माता के द्वार सबको एक आंख से ही देखा जाए क्योंकि यहां जो कर रहा है उसी के संकेतानुसार ही! प्रश्न करने का बिना अधिकार पाये तप करने से ही क्या लाभ? क्यों न हम सुखी संसारी की तरह सफल अभिनय करने की ही कोशिश करें?

सन्यासी—मैं तुम्हारे साथ तर्क करना नहीं चाहता। आखिर तुम क्या चाहते हो?

वामदेव—मैं चाहता हूँ वासन्ती के साथ इस आश्रम से मुक्त होजाना।

सन्यासी—वासन्ती के साथ मुक्त होजाना। (हंसता है) जानते हो वह कौन है। जानते हो कोई किसी मोल भी उसे प्राप्त नहीं कर सकता।

वामदेव—क्यों गुरूदेव?

सन्यासी—वह विष-कन्या है। उसका आलिंगन मृत्यु का आलिंगन है। उसके संपर्क से जीवन की धड़कन समाप्त होजाती है।

वामदेव—क्यो गुरूदेव?

सन्यासी—बचपन से ही एक एक तिल विष पिलाकर मैंने उसकी धमनियों और धमनी के प्रत्येक रक्तबिन्दु में विष फैला दिया है।

वामदेव—(आश्चर्य्य) विष फैला दिया, किन्तु आपने ऐसा किया क्यों?

सन्यासी—ताकि वह तुम्हारे जैसे वासना-जर्जर युवकों का शिकार न बन सके और मेरे संयम का साधन बनी रहे।

वामदेव—तो फिर कल्याणी की मृत्यु का पाप भी आपके सिर है। आपने भंयकर पाप किया है। आपने वासन्ती की जिन्दगी को सूना और वीराना बना दिया, परन्तु आपको उससे क्या लाभ हुआ?

सन्यासी—उसका एक रहस्य है वत्स। लगातार पन्द्रह वर्ष तप करने के बाद एक बार मैं नगर की ओर गया। वहां एक सुन्दर तरुणी के रूप और लावण्य को देख कर मैं मन ही मन कांप उठा। मुझे ऐसा मालूम होने लगा कि मेरे वर्षों के तप-संयम मुझसे

सदा के लिये दूर भागे जा रहे हैं। उस दिन जीवन में पहली बार मुझे अनुभव हुआ कि लालसा मनुष्य के हृदय में कुछ देर के लिये दबाई जा सकती है, सदा के लिये बुझाई नहीं। उस दिन मेरे हृदय में पन्द्रह वर्ष पहले की परित्यक्ता लालसा नई-नवेली सी, जीवन के प्रथम उन्माद सी आंखों के सामने आ खड़ी हुई। मैंने देखा मेरा सारा परिश्रम व्यर्थ गया।

वामदेव—किन्तु वासन्ती के जीवन को आपने क्यों मिथ्या किया ?

सन्यासी—जल से दूर रहकर सभी प्यासे रह सकते हैं किन्तु सजल नदी के किनारे खड़ा होकर प्यासा रहने की कोशिश कर रहा हूँ वामदेव !

वामदेव—किंतु वासन्ती.....

सन्यासी—मैं उसकी कहानी भी तुम्हें सुनाऊंगा। एक दिन प्रातःकाल आश्रम के पीछे नदी तट पर पड़ी हुई एक बहुत सुन्दर दो वर्ष की लड़की मुझे मिली। समझने में देर नहीं लगी कि मेरी कमजोरी पर दया करके भगवान ने मेरी साधना को मेरे पास भेज दिया है।

वामदेव—तो क्या वासन्ती ही वह बालिका है ?

सन्यासी—हां, यह वही बालिका है। उसे अपनी साधना का आधार बनाकर अपनी प्यास को समूल कुचल डालने के लिए ही मैंने उसे पालकर इतना बड़ा किया है। उसे मैंने इसलिए आश्रय दिया था कि उसे सामने रखकर अपनी लालसा को अच्छी तरह पैदा होने दूं और फिर सदा के लिए मिटा डालूं, थोड़ी देर के लिए बुझाऊ नहीं। तुम्हें भी उसे अपना योग का साधन बनाना चाहिए वामदेव, और उसकी सत्यता परख कर अपनी इच्छाओं का दमन करना चाहिए।

वामदेव—तो क्या, आप यह कहना चाहते हैं कि उसकी अपनी इच्छाओं का कोई मोल नहीं ? उसे अपने योग का साधन बनाना क्या अपनी लालसा पूरी करने के साधन बनाने की बराबर नहीं हुआ ? क्या उसके लिए योगी और भोगी दोनों एक से नहीं हुए ?

सन्यासी—उसकी इच्छाएं एक चमक से अधिक कुछ नहीं। वे तुम्हें पाप की तरफ ले जायेंगी और तुम्हारा शान्त जीवन संसार की हलचल में एक बुलबुले की तरह फूट कर नष्ट हो जाएगा संयम से तुम्हारा जीवन.....

वामदेव—संयम का नाम न लीजिए गुरुदेव ! मैंने दोनों का एक ही परिणाम देखा है। संयम उनके लिए है जो कायर की तरह दुनिया की विपद से दूर भाग जाना चाहते हैं। मुझे अब आपके निराकार शून्य में विश्वास नहीं रहा। मैं चाहता हूं साकार उपासना। गुरुदेव। मैं हाथ जोड़ता हूं। मुझे आगे बढ़ने से न रोकिए।

सन्यासी—अरे पागल ! इस विम्मि के उस पार भगवान् का प्रेम और विश्व की शान्ति तेरा इन्तजार कर रहे हैं।

वामदेव—तो एक बार उस विम्मि को तोड़कर दिखा दीजिए गुरुदेव ! कि उसके उस पार क्या है ? मुझे भी तो मालूम हो जाए कि जिस राह से मैं आगे बढ़ रहा हूं, उस कल्पना का क्या अन्त है।

सन्यासी—बकवास न करो, वामदेव, मैं तुम्हें ईश्वर तक पहुंचाऊंगा।

वामदेव—सन्यासी और तपस्वी होकर जब आप खुद ईश्वर तक नहीं पहुंच सके तो मैं किस आशा पर आपके पीछे आऊं गुरुदेव ? मैंने बिना तप किए ही ईश्वर पा लिया है।

सन्यासी—तुमने ईश्वर पा लिया है ?

वामदेव—मनुष्य से प्रेम करके मैंने ईश्वर का अस्तित्व देख लिया है। आंखें बन्द करके मुझे सूने अन्तरिव के सिवाय कुछ नहीं दीखा और न कहीं से मुझे प्यार और सान्त्वना के चार शब्द सुनाई दिए, किन्तु वासन्ती से प्रेम करके मैंने उसकी आंखों में ईश्वर का प्रतिविंद अपनी आंखों देखा है गुरुदेव !

सन्यासी—अरे मूर्ख ! उस उद्विग्नता का नाम वासना है।

वामदेव—वासना नहीं, यह सच्चा प्रेम है। मैं उससे प्रेम करता हूँ और वह मुझ से।

सन्यासी—क्या वासन्ती तुम से प्रेम करती है ?

[वासन्ती ने तेजी से प्रवेश किया]

वासन्ती—यह मिथ्या है, गुरुदेव ! वामदेव तुम झूठे हो।

वामदेव—वासन्ती !

सन्यासी—क्या यह सत्य है वासन्ती। मुझे तो भ्रम होने लगा था कि मेरी कल्पना का आदर्श असफल होरहा है।

वासन्ती—वासन्ती किसी पथ भ्रष्ट युवक से प्रेम नहीं कर सकती, और यही उसके जीवन की सबसे बड़ी साधना है गुरुदेव ! मैं संयम को आदर और श्रद्धा से देखती हूं।

सन्यासी—वासन्ती ! मुझे तुझ पर गर्व है। तू मेरे आश्रम की आभूषण है।

वामदेव—उस दिन तुमने क्या कहा था वासन्ती ?

वासन्ती—मुझे बेहोशी की हालत में ही तुम उठाकर मेरी कुटिया में ले गए थे, मैं उस समय अचेत थी।

वामदेव—किन्तु जब कल्याणी .....

वासन्ती—उस समय भी मैं मूर्छित थी। क्या मैंने तुमसे नहीं कहा था कि तुम्हारे स्पर्श से मेरे शरीर में कांटे-कीसी पीड़ा होती है, मैं बेहोश सी होने लगती हूं।

वामदेव—वासन्ती ! तो क्या अब तक मैं भ्रम में ही लटका रहा ?

वासन्ती—हां तुम भ्रम में लटक रहे हो। गुरुदेव की दया से मैं एक आदर्श नारी हूं जिसे पुरुष की इच्छा ही नहीं।

वामदेव—क्या तुमने यह नहीं कहा था कि इच्छाओं की शान्ति की कल्पना मिथ्या है और कल्याणी का शव ऐसी चेष्टा का उपहास कर रहा है ? तुमने ही तो कहा था कि मुझे कल्याणी के शव से शिक्षा लेनी चाहिये। मैने वह शिक्षा लेली वासन्ती !

वासन्ती—तुमने अपना व्रत तोड़ा है वामदेव !

वामदेव—तुमने ही कहा था कि तुम मेरी पूजा करती हो वासन्ती !

वासन्ती—वासन्ती केवल पत्थर की ही पूजा कर सकती है और तुम उस समय पत्थर थे।

वामदेव—और अब ?

वासन्ती—अब तुम पुरुष हो। जाओ वामदेव! मैं हर पुरुष से घृणा करती हूं और तुम भी एक पुरुष हो। तुम यहां से चले जाओ।

वामदेव—अच्छा वासन्ती, तुम्हारी इच्छा पूरी हो। तुम्हारे हाथों से गिरकर चूर होने में ही माधवी-भरी मेरी जीवन-प्याली का अखंड सौभाग्य है।

सन्यासी—जाओ वामदेव, मैंने तुम्हारे व्रत से तुम्हें छुटकारा दिया। तुम अपनी प्रतिज्ञा तोड़ चुके। तुम आश्रम से बाहर निकल जाओ।

वामदेव—अच्छा तो मैं जा रहा हूँ वासन्ती! इस आश्रम में एक दिन पत्थर बन कर आया था और आज पुरुष बन कर जा रहा हूं।

स्त्रियश्चरित्रम् पुरुषस्य भाग्यम्
देवो न जानाति कुतो मनुष्यः।

[नतमस्तक एवँ चिन्ताग्रस्त प्रस्थान]

वासन्ती—(उस पथ की ओर कुछ देखती हुई, दीर्घोश्वास लेती है) ठीक कह गये वामदेव! (कुछ क्षण पश्चात) स्त्री अपना चरित्र स्वयं नहीं बना ती। उसे बनाने वाला पुरुष ही होता है।

सन्यासी—(आश्चर्य के साथ) पुरुष?

वासन्ती—हां गुरुदेव! क्या आपने मुझे अपने आदर्शों के अनुसार नहीं बना दिया?

सन्यासी—हां, मैंने तेरा निर्माण अपने आदर्शों के अनुसार ही किया है। तूने मेरी शिक्षा सार्थक की है।

वासन्ती—और आज मैं आप की शिक्षा के साथ आप का जीवन भी सार्थक कर दूंगी, गुरुदेव!

सन्यासी—(नहीं समझकर) हां, ऐसा ही होगा। उस नराधम वामदेव ने प्रेम के गीत गा गा कर आश्रम के वातावरण को जहर से भर दिया था। खैर, जो हो, आज मैं खुश हूं। आज तप और संयम ने वासना पर विजय पाई है। नाचो वासन्ती, आज तो एक सुन्दर-सा नृत्य नाचो।

वासन्ती—जो आज्ञा गुरुदेव!

[अत्यन्त सुन्दर आकृति बनाकर वासन्ती ने नृत्य आरम्भ कर दिया]

सन्यासी—(आंखें दोनो हाथों से बन्द करके) यह कैसा नृत्य वासन्ती !

वासन्ती—(रुककर) क्यों गुरु देव ?

सन्यासी—इस नृत्य को तू आश्रम में नहीं नाच सकती। यहां ऐसे नृत्यों का होना निषेध है। उसे देखना पाप है, उससे वासना की जागृति होती है। यहां तो पूजा-नृत्य ही प्रसंशित है वासन्ती !

वासन्ती—आप तो वासना के परे हैं गुरुदेव ! क्या आप को अपने तप और संयम पर विश्वास नहीं ?

सन्यासी—संयम और तपस्या ? (कुछ सोचकर) हां मुझे पूरा विश्वास है, मैं वासना को जीत चुका हूं। अच्छा नाचो, अब मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं। आज अपने को फिर एक बार परख लूँ।

वासन्ती—अच्छी तरह परख लीजिए गुरुदेव ! जिस तरह मैं आज अपने को परख रही हूँ।

[वासन्ती फिर नृत्य आरम्भ करती है। सन्यासी निर्निमेष दृष्टि से देखता हुआ प्रसन्न होता है। धीरे-धीरे उसकी आंखोंमें वासना झलक आती है]

सन्यासी—नाचे जाओ, कामिनी, नाचे जाओ ! मैं अब तुम्हें नहीं रोकूंगा। (वासन्ती तेजी से नाचने लगती है) हां, सृष्टि का यही पुरातन नृत्य, जग को उन्मत्त बना देने वाला यही नृत्य, नाचे जाओ। [अट्टहास करके खड़ा हो जाता है और फिर वासन्ती को देखता हुआ धीरे-धीरे उसके समीप आता है] वासन्ती ! वासन्ती ! (वासन्ती रुक जाती है, सन्यासी उसके बिलकुल पास आजाता है) वासन्ती ! आज मैं अपने प्राणों में नव-सिहरन अनुभव कर रहा हूँ।

वासन्ती—नव सिहरन ? गुरुदेव, नव-सिहरन ?

सन्यासी—हां वासन्ती, नव-सिहरन।

वासन्ती—तो आइए गुरुदेव ! इस शिला खंड पर बैठें।

सन्यासी—नहीं वासन्ती ! और नाच, अभी और नाच !

[वासन्ती फिर नाचने लगती है। कुछ देर के बाद सन्यासी फिर कहता है।]

सन्यासी—अच्छा वासन्ती ! अब नृत्य बन्द करदे। (तथाकरण) वासन्ती ! तू स्वर्ग की अप्सरा है।

वासन्ती—और आप मेरे सुरराज।

[गालों पर उंगलियों की छाप लगा देती है]

सन्यासी—वासन्ती ! मैं तुझसे कुछ कहना चाहता हूं।

वासन्ती—कहिए गुरुदेव !

सन्यासी—तूने क्या कहा, मैं तेरा कौन हूँ ?

वासन्ती—मेरे सुरराज, मेरे देवता।

सन्यासी—सच वासन्ती ! क्या सचमुच मैं तेरा देवता हूँ।

वासन्ती—हां गुरुदेव ! वासन्ती जन्म से ही अपनी कुटिया की पाषाण-मूर्त्त की या आपकी पूजा करती आई है।

सन्यासी—मैं तो पाषाण नहीं हूँ वासन्ती !

वासन्ती—मैंने आपको सदा यही समझा है। मैंने वामदेव से भी यही कहा था कि मैं आपको पाषाण की मूर्त्ति समझ कर पूजती हूँ।

सन्यासी—(ईर्षा से) वामदेव ! बार-बार वामदेव की याद क्यों वासन्ती ? मैं तेरे मुख से उसका नाम नहीं सुनना चाहता ! आज जीवन में पहली बार तेरे मुख से दूसरे का नाम सुन कर मुझे ईर्षा हो रही है।

वासन्ती—अच्छा, अब मैं कभी उसका का नाम नहीं लूंगी।

सन्यासी—हां, वह स्वप्न की तरह चला गया। जो जीवन की तरह सामने है उसका स्मरण कर पद्मिनी ! जो मृत्यु की भांति चला गया, उसे याद कर क्या मिलेगा ?

वासन्ती—वामदेव को मैं भूल चुकी हूँ गुरुदेव ? मैंने उसकी पूजा करनी चाही थी, किन्तु वह मेरी पूजा का भार नहीं सम्हाल सकता था। अब मैं आपको छोड़कर कहीं नहीं जाऊंगी मेरे देवता !

सन्यासी—[अनुरागपूर्ण दृष्टि से देखता हुआ और उसका एक हाथ अपने हाथों में लेकर] सच वासन्ती ! तू मुझे छोड़ सचमुच नहीं जायगी ? आ मेरे पास बैठ।

(वासन्ती उसके चरणोंके पास बैठती है) और पास आ वासन्ती !

वासन्ती—(तथाकरण) मेरा स्पर्श क्या पाप नहीं है गुरुदेव ?

सन्यासी—मैं सिद्ध व्यक्ति हूं। मैने वासना पर विजय पाई है ! सिद्ध पुरुषों पर कोई नियम लागू नहीं होता।

वासन्ती—एक स्त्री के द्वारा क्या अब आपको अपनी आत्मा कलंकित होने का भय नहीं रहा, गुरुदेव ?

सन्यासी—आत्मा पर बिना धब्बा लगाए ही शरीर की मांग पूरी की जा सकती है, मेरा यही विश्वास है !

वासन्ती—मैं आपकी दासी हूं। मैं अपना तन, मन, धन, सभी तो आपकी पत्थरकी मूर्तिके चरणोंमें कबकी अर्पण कर चुकी हूँ गुरुदेव!

[अपना मस्तक सन्यासी के घुटनों पर रख देती है। सन्यासी उसका सिर सहलाने लगता है। इतने में नेपथ्य से आवाज आती है स्त्रिय श्चरित्रम् पुरुषस्य भाग्यम् .....सन्यासी उस ओर देखने लगता है।]

सन्यासी—हैं, यह मैं क्या सुन रहा हूँ ? (वासन्ती को छोड़कर अकस्मात खड़ा होजाता है)

वासन्ती—वामदेव की आवाज ?

सन्यासी—नहीं-नहीं, अपनी आत्मा का धिक्कार।

वासन्ती—नहीं ! अपने कुचले हुए हृदय की आह, अपने तपाए हुए अरमानों की फुफकार। आइये गुरूदेव, क्यों अपनी प्यासी हसरतों को और तड़पा रहे हैं ? बैठिये ना, इस शिला खंड पर।

सन्यासी—नहीं-नहीं वासन्ती, तू अपना चक्र मुझ पर नहीं चला सकती। मैं मंत्र मुग्ध सा अपने को भूलकर तेरी ओर खिंचा जा रहा था। अब मेरी आंखें खुल गई। अब मैं अपने तप और साधना से नहीं गिर सकता।

वासन्ती—तप और साधना ? (हंसती है) तुम्हारा तो कब का पतन हो चुका है सन्यासी ! तुम्हारी राह उतनी ही कठिन है जितनी वामदेव की थी।

सन्यासी—वामदेव की ? जा तू वामदेव के ही पास जा। मैं उसकी तरह तुझे भी मुक्ति देता हूँ।

वासन्ती—(आगे बढ़ती हुई) मैं तो तुम से प्रेम करती हूँ गुरूदेव ! वामदेव के पास जाना होता तो मैं उसके साथ ही चली जाती।

सन्यासी—(पीछे हटता हुआ) दूर हो जा राक्षसी यहां से। खबरदार जो मेरे समीप आई !

वासन्ती—तुम्हें छोड़ अब कहां जाऊं, बोलो ! तुमने ही तो मेरे सारे द्वार रुद्ध कर रक्खे हैं। तुम्हारे हृदय के अतिरिक्त मुझे संसार में कहां स्थान मिलेगा ? आओ सन्यासी, मुझे अपने वक्षस्थल में स्थान दो।

[आलिंगन के लिए हाथ प्रसारित करती है, सन्यासी तेजी से पीछे हट जाता है]

सन्यासी—नहीं, वासन्ती, नहीं, तू मेरी ओर क्यों बढ़ी आरही है ? तू भूल गई तू विष-कन्या है ? तू नहीं जानती तेरे रक्त में भयानक विष प्रवाहित है ? क्या तुझे नहीं मालूम कि तेरा आलिंगन मृत्यु का आलिंगन है ?

वासन्ती—जानती हूँ, और जान कर ही मैं तुम्हें अपने बाहुओं में जकड़ लेना चाहती हूँ योगीराज ! जिस विष-वृक्ष को तुमने वर्षों के कठिन परिश्रम के बाद पाल कर इतना बड़ा किया है, उसका मधुर फल भी तो तुम्हें ही चखना पडेगा। आओ विरागी ! केवल एक आलिंगन—

[फिर आगे बढ़ती है, सन्यासी पीछे हट जाता है]

सन्यासी—पाषाणी ! तेरे नेत्रों में प्रतिहिंसा की भयानक लपटें देख रहा हूँ।

वासन्ती—यह मेरी आत्मा की चिता की लपटें हैं गुरूदेव ! आओ, इसमें आज हम और तुम दोनों जल मरें·····तुम्हारी देह और मेरी आत्मा।

[सन्यासी का हाथ पकड़ लेती है। वह झटक कर छुड़ा लेता है]

सन्यासी—नागन ! दूर हो, जा यहां से।

वासन्ती—अब तुम मुझे यहां से दूर नहीं भेज सकते। मैंने तुम्हारी साधना और तपस्या के कवच को तोड़ दिया है। मेरे रूप और यौवन का सलोनापन तुम्हारी आंखों की राह से तुम्हारी नस-नस में

समा चुका है। आज तक मेरा अपूर्व ऐश्वर्य्य कोई नहीं पा सका किन्तु तुम्हें तो नहीं ठुकराना चाहिए योगी !

सन्यासी—दूर हो जा पापिनी ! अभी निकल जा मेरे आश्रम से।

वासन्ती—इतना आगे बढ़कर अब मुझ से पीछे नहीं हटा जाएगा। आओ विरागी क्यों झूठी छाया के पीछे अपना जीवन नष्ट कर रहे हो (पकड़ लेती है)

सन्यासी—काली नागन छोड़ मुझे। (छुड़ाने की चेष्टा करता है)

वासन्ती—मैं तुम्हारे सपने सच कर रही हूँ योगीराज !

[बलपूर्वक जकड़ कर आलिगन-बद्ध कर लेती है और अपना श्वास जोर से उसके मुंह पर छोड़ देती है]।

सन्यासी—[विकल होकर] आह ! विष, भयंकर विष, सर्पिनी। विष की भयंकर....प्रति... मैं जल रहा हूँ.....ज्वाला.....ज्वाला..... आह ! (गिर पड़ता है)

वासन्ती—(अट्टहास करके) जल रहे हो ? जलो, एक बार तो ऐसे जलो जैसे मैं सारे जीवन जलती रही हूं और जलती रहूँगी। तुमने विष खिलाकर मुझे विष-कन्या बनाया और आज तुम्हारी वासना बनकर मैंने तुम्हें डस लिया। क्यों योगीराज ! तुम तो वासना पर सदा के लिये विजय पाचुके थे ना ? नदीके किनारे खड़े होकर प्यासा रहने की कोशिश कर रहे थे ? (हंसना)

सन्यासी—(तड़पता हुआ) ओफ !.....पापन, तूने भयंकर पाप किया है, तूने मेरी हत्या की है .....मैं.....मर.....रहा हूं। मैं..... मर .....(मृत्यु)

वासन्ती—पापन ? [हंसना] यह पाप नहीं है योगीराज ! यह तो मेरे जीवन.....का अभिशाप था कि जिसे मैं प्रेम करना चाहती थी, उसे मुझे ठुकराना पड़ा और जिसे मैं घृणा करती थी उसे गले का हार बनाना पड़ा ! तुमने मुझे विष-कन्या बना कर मेरे जीवन की हत्या की और मैंने तुम्हारे झूठे आदर्शों की हत्या करके अपना प्रतिकार लिया। तुम्हारा शव मेरे उन अरमानों

की लाश है जिनके तुम जन्म-जन्मान्तर से हत्यारे रहे हो, [सोचकर] अब मैं भी जा रही हूं इस विषमय शरीर को गंगा में अर्पण करने, जो तुम्हारे आदर्शों की चिता में धू-धू कर जल रहा है। [वेग से प्रस्थान]

पट-परिवर्तन

स्थान—गंगा तट

समय— प्रातःकाल

[पक्षियों के कलरव का शब्द सुनाई दे रहा है। प्रकृति में सौन्दर्य्य है। वासन्ती हतोत्साह सी एक हाथ में पत्थर की एक छोटी सी मूर्त्ति लिए प्रवेश करती है। कुछ सोचती हुई वह पास के शिलाखंड पर बैठ जाती है]

वासन्ती—सब समाप्त होगया। कोलाहल थम गया। कल्याणी की इच्छायें शान्त हो गई, वामदेव ····शायद कहीं दूर चला गया। गुरुदेव के तप और संयम की भी आखिरी परख हो चुकी और इन सबके साथ मेरा जीवन भी लक्ष्यहीन और खाक हो गया। अब कुछ भी तो नहीं रहा जिसके सहारे मैं जीवित रहूं। बच गई है केवल यह मेरी कुटिया की पाषाण-मूर्त्ति। (कुछ देर के बाद सोचकर) तो क्या अब मैं इस पाषाण-मूर्त्ति की आराधना के लिए ही ज़िन्दा रहूँ? मैंने तो जिस पाषाण की पूजा की वही इन्सान हो उठा। यदि यह पत्थर की मूर्त्ति भी मनुष्य हो उठी तो? वामदेव और गुरुदेव भी तो पत्थर थे, पर इन दोनों में से कोई भी मेरे आत्मसमर्पण का भार नहीं सम्भाल सका। फिर मैं किस विश्वास पर इस पाषाण मूर्त्ति की पूजा करती रहूं! जाओ देवता, तुम पर अब मेरी श्रद्धा नहीं रही। जाओ, तुम भी इस नदी में विलीन हो जाओ।

[मूर्त्ति को नदी में फेंक देती है उसका शब्द सुनकर नदी के दूसरे तट पर वामदेव आ जाता है]

वामदेव—तुम्हारे जीवन और विश्वास की साधना ! यह कैसे वासन्ती ?

वासन्ती—मैंने पत्थर की मूर्त्ति को इस जल में फेंक दिया है और अब स्वयं गंगा की धारा को अपना शरीर अर्पण करने जारही हूँ।

वामदेव—शरीर अर्पण करने जारही हो ? क्यों ?

वासन्ती—जब सारे विश्वासी डूब गए तो मैं अकेली किसके सहारे जीती रहूँ वामदेव !

वामदेव—क्यों, गुरूदेव तो हैं ?

वासन्ती—वे भी तुम्हारी तरह मनुष्य निकले। मैं उनसे अपना बदला ले आई हूं।

वामदेव—(साश्चर्य) बदला ले आई हो ?

वासन्ती—हां, आश्रम में पड़ा उनका शव उनके तप और संयम को परख रहा है।

वामदेव—(आहत-सा) यह तुमने क्या किया पाषाणी ?

वासन्ती—वही जो एक विष-कन्या को करना चाहिए था।

वामदेव—तुम क्या कह रही हो वासन्ती ! मैं कुछ नहीं समझ रहा हूं। अच्छा ठहरो, मैं अभी तैर कर तुम्हारे पास नदी के उस पार आता हूं।

वासन्ती—सावधान वामदेव ! ऐसा न करना। तुमने जरा भी तैर कर मेरे पास आने का यत्न किया, तो इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। तुम्हारे आने के पहले मुझे गंगा की धारा में कूद कर प्राण दे देने पड़ेंगे।

वामदेव—तुम मुझ से इतनी घृणा करती हो ?

वासन्ती—नहीं वामदेव !

वामदेव—गुरूदेव के सामने तो यही कहकर तुमने मुझ से चले जाने को कहा था।

वासन्ती—तुम उस समय कर्त्तव्यच्युत हो रहे थे। गुरूदेव के साथ तुम्हारी सारी बातें मैंने आड़ में सुन ली थी। मैं तुम्हारा सर्वनाश नहीं करना चाहती थी वामदेव !

वामदेव—तो वासन्ती, तुम क्या सचमुच मुझ से प्रेम करती हो ?

वासन्ती—(दीर्घश्वास) हां वामदेव।

वामदेव—वासन्ती ! एक बार मुझे अपने पास आने दो। तुम आज्ञा दे दो, मैं तैर कर अभी तुम्हारे पास आ जाऊंगा।

वासन्ती—नहीं, वामदेव !

वामदेव—फिर हमारा मिलन.....

वासन्ती—काश, यह हो सकता !

वामदेव—क्यों वासन्ती ?

वासन्ती—मैं विष-कन्या हूँ। ज़हर से भरा हुआ मेरा शरीर हमारे मिलन के बीच है, ठीक वैसे ही जैसे इन दोनों तटों के बीच नदी की यह प्रचण्ड धारा।

वामदेव—एक बार मेरी ओर देखो वासन्ती, (वासन्ती ने प्रथम बार उस ओर देखा) तो क्या हम तुम कभी एक न हो सकेंगे ?

वासन्ती—हो सकते हैं, किन्तु इन दो नदी-कूलों की तरह जो निरन्तर अलग होने पर भी एक दूसरे से अलग नहीं हैं। तुम गंगा के उस तट बैठे मुझे देखा करना और इस पार बैठी हुई मैं तुम्हें। यहीं हमारा तुम्हारा चिर-वियोगयुक्त चिर-मिलन होगा वामदेव !

[दोनों प्रेम-पूर्ण दृष्टि से एक दूसरे को देखते हैं]

———

नेपोलियन के विजय-रहस्य

अक्टूबर १९४२

नेपोलियन के विजय-रहस्य

प्रवेश—जिस समय इटली ने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की, उस समय इटली और फ्रांस की सेनायें लेम्बोर्डी के दोनों ओर डेरे डाले पड़ी थीं। इसके दो दिन पूर्व आस्ट्रिया ने प्राणपण से चेष्टा की थी कि शत्रु की सेना को आगे बढ़ने से रोक दे, किन्तु फ्रांसीसी सम्राट नेपोलियन, जिसकी अवस्था उस समय केवल सत्ताइस वर्ष की थी और जिसने कभी युद्ध के नियमों के आगे सिर झुकाना नहीं सीखा था, अपने हाथों तोप चलाता हुआ दुश्मन की उम्मीदों पर पानी फेरता रहा।

फ्रांस की क्रांति के बाद सैनिकों को वेतन न देने की एक प्रथा सी हो गई थी और उस समय नैपोलियन की आर्थिक अवस्था भी ऐसी नहीं थी कि अपने सिपाहियों को कई वर्ष का वेतन चुका देता, या कि अपने रक्तरंजित नेत्र दिखाकर या अपनी त्यौरी चढ़ाकर अपने हुक्म की तामील करा लेता।

उसकी सेना को समय पर न तो खाना ही मिलता था और न विश्राम ही। उनकी वर्दियों ने फट कर धज्जियों का रूप धारण कर लिया था, फिर भी वह नेपोलियन के लिये जान की बाजी लगाने आये थे। नेपोलियन का क्या रहस्य था कि वह जो चाहता, उनसे करवा लेता ? नेपोलियन उन्हें क्या देता था ? वह थी उम्मीद और देश के नाम पर मर मिटने की दुहाई।

आंधी की तरह तेज, होनहार की भांति दुर्वार और मौतसे भी अधिक कराल अपने विजय रथ को नेपोलियन आधे से ज्यादा यूरोप की छाती पर से बिना रोक टोक के निकाल लाया था। छोटी सी सेना लेकर उसने शक्तिशाली शत्रु को उस समय धूल की तरह उड़ा दिया। यह उसकी अदम्य शक्ति का परिणाम था कि उसने जहां आक्रमण किया, विजय पाई। जहां कदम रक्खा लोगों ने सिर झुका कर उसका स्वागत किया।

कल के युद्ध का मानचित्र बनाने के लिये फ्रांसीसी महारथी व्याकुल थे, क्योंकि संध्या से ही नेपोलियन अपने शिविर से गायब था और उस के अतिरिक्त युद्ध का मानचित्र बनाता ही कौन ? बहुत खोज की गई, किन्तु उसका कहीं पता नहीं चला। कौन सा हो सकता है वह आकर्षण, जो ऐसे नाजुक वक्त में उसे शिविर से दूर खींच ले गया ? फिर.....? अब मानचित्र बनेगा कैसे ? कल को युद्ध होगा किस प्रकार ?

× × ×

समय—रात्रि

स्थान—टावाजोनो में एक सराय।

[सराय का प्रबन्धकर्ता पिकोते, अपने घोड़े को पानी पिला रहा है। इसी समय बहुत थकी मांदी सी एक युवती वहां दौड़ी आती है ! उसकी अवस्था १८ से अधिक नहीं है। सुन्दर एवं सुभाषिणी है, किन्तु उसके मुरझाये हुए चेहरे की तरफ देखने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह बहुत थकी और घबराई हैं। वह दबे पैर पिकोते के पास आ जाती है।]

युवती—मैं इस सराय के मालिक से मिलना चाहती हूं।

पिकोते—जी, मैं ही हूँ पिकोते, इस सराय का प्रबन्धकर्त्ता। आज्ञा दीजिये मैं आप की क्या सेवा कर सकता हूँ।

युवती—ओह ! तुम ही हो पिकोटे ? तुम ही .....

पिकोते—जी, पिकोटे नहीं, पिकोते। क्षमा कीजियेगा, बातचीत से आप आस्ट्रिया निवासी मालूम होती हैं। क्या मैं आप का नाम जान सकता हूँ ?

युवती—तुम्हें मेरे नाम से क्या मतलब ? मुझे एक कमरा चाहिये।

पिकोते—आप कदाचित जानती नहीं कि आस्ट्रिया के महाशत्रु नेपोलियन इस समय इस सराय में ठहरे हुए हैं। उनकी मौजूदगी में क्या आप यहां ठहरना पसन्द करेंगी ?

युवती—क्या मैं तुम्हारा विश्वास करलूं कि अपनी सेना को यहां से पचास मील दूर लेम्बोर्डी में अकेली छोड़ नेपोलियन यहां ठहरा हुआ है ?

पिकोते—हां, वे यहीं ठहरे हुए हैं और किसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

युवती—कोई चिन्ता नहीं। मैं जरूर यहीं ठहरूंगी क्योंकि मैं जानती हूं कि नेपोलियन की शत्रुता आस्ट्रिया की राजशक्ति से है, हर बूढ़े बच्चे औरत से नहीं। तुम्हारे यहां कौन सा कमरा खाली है ?

पिकोते—ऊपर के सारे कमरे खाली हैं। बावर्चीखाने में आप को मेरा नौकर मिलेगा। आप उसकी सहायता से अपने आराम का प्रबन्ध करलें, मैं इस समय नेपोलियन की सेवा में हूँ। मुझे दुःख है आपकी खिदमत नहीं कर सकूंगा। यह लीजिए तालियों का गुच्छा।

[युवती गुच्छा लेकर चली जाती है पिकोते भी थोड़ी देर के बाद पानी पिला कर अन्दर चला जाता है।

पट-परिवर्तन

स्थान—उसी सराय का कमरा।

[कमरा बहुत पुराना-सा है। वर्षों से उस पर सफेदी नहीं हुई है। नेपोलियन एक कुर्सी पर बैठा हुआ कल के युद्ध के लिये मान-चित्र बना रहा है। सामने एक टूटी हुई कुर्सी और एक पुरानी मेज पड़ी हुई है। पिकोते दबे पैर आकर वहां खड़ा हो जाता है।]

पिकोते—लाल रोशनाई नहीं मिल सकी आलमपनाह !

नेपोलियन—हमें 'नहीं' सुनने की आदत नहीं जाओ, किसी का खून लेआओ।

पिकोते—(घबरा कर) किस का खून ले आऊं, आलमपनाह ? इस समय इस सराय में आपके घोड़े, सिपाही और मेरी स्त्री के सिवाय .....

नेपोलियन—अपनी स्त्री की हत्या करके उसका खून ले आओ।

पिकोते—(बौखलाहटसा) आ... ल...म ...पनाह .....स्त्री की हत्या.....

नेपोलियन—कायर ! कोई है ! (एक सन्तरी का प्रवेश) थोड़ा सा खून।

सन्तरी—इतनी रात को खून !

नेपोलियन—क्यों, क्या तुम्हारे शरीर का खून सूख गया ? तुम अपनी उंगली काट कर थोड़ा सा खून नहीं दे सकते ? तुम देख रहे हो हम कल के युद्ध के लिए नक्शा बना रहे हैं ? खून की आवश्यकता हमें नहीं है, जरूरत है तुम्हारे देश को।

[सन्तरी राइफल की बोनट से अपनी उंगली काटकर और खाली कारतूस में रक्त भर कर सामने रख देता है और चला जाता है। नेपोलियन फिर मान-चित्र बनाने में तल्लीन हो जाता है। कुछ काल तक स्तब्धता रहती है, जिसे पिकोते भंग करता है।]

पिकोते—सम्राट ! लोग कहते हैं कि आपकी आंखें मनुष्य के जीवन का मूल्य नहीं जानतीं।

नेपोलियन—(मानचित्र बनाते हुए) हम किसी के जीवन का मूल्य नहीं जानते, न अपने और न दूसरे के ही। हम उसके जीवन की कद्र करते हैं जो मनुष्य की तरह मरना जानता है, जानवर की तरह जीना नहीं, चाहे वह हमारा शत्रु ही क्यों न हो।

पिकोते—सम्राट ! जब सारा यूरोप आपके चरणों पर लोटने लगेगा और आप समस्त यूरोप के सम्राट हो जायेंगे, तो भी क्या .....

नेपोलियन—(बात काट कर क्रोध से) क्या कहा ? यूरोप का सम्राट, केवल यूरोप का ही सम्राट, पिकोते ?

पिकोते—(सम्हलता हुआ) मुझ से भूल हुई, मैं गलत बोल उठा। मैं कहना चाहता था सारे संसार के सम्राट, मैं ... ... मैं..... क्षमा चाहता हूं।

नेपोलियन—(डांटकर) पिकोते, तुम शायद जानते नहीं हम अपने मुंह पर अपनी तारीफ सुनना पसन्द नहीं करते। हम जानते हैं तुम क्या कहना चाहते थे।

(इतने में बाहर से घोड़े की टापों का शब्द सुनाई दिया)। पिकोते, बाहर घोड़े की आवाज है, शायद वह आ गया।

पिकोते—(बाहर झांक कर) यह तो मेरा घोड़ा है, सम्राट ! मेरा नौकर किसी काम से बाहर जा रहा है। मुझे सन्देह नहीं, वरन् विश्वास है कि शत्रु ने उसे बन्दी कर लिया है।

नेपोलियन—ऐसा नहीं हो सकता। पत्र बहुत आवश्यक है। यदि ऐसा हुआ तो याद रखना, हम तुम्हारी हत्या कर डालेंगे, तुम्हारी सराय में आग लगा देंगे।

पिकोते—गुलाम आपके हाथों मरना अपना सौभाग्य समझेगा।

नेपोलियन—(कातरता से देखते हुए) ना, पिकोते, हम तुम्हें नहीं मारेंगे। जो पशु की तरह बिना बाधा के मृत्यु के आगे सिर झुका देते हैं, उन्हें मार कर अपने हाथ रंगना हम पसन्द नहीं करते।

[एक सन्तरी ने आकर घोषणा की "लेफ्टिनेन्ट निकलसन" उसने प्रवेश किया और कोर्निस की]

नेपोलियन—अपनी सेना का सब से तेज सवार समझ हमने तुम्हें डाक लाने भेजा था। तुमने छः बजे पहुंचने का आश्वासन दिया था। इस समय हैं (घड़ी देख कर) आठ बजने में २० मिनट। किस लिए की तुमने सौ मिनट की देर ?

निकलसन—सम्राट !

नेपोलियन—उत्तर नहीं सुनना चाहते। डाक कहां है ?

निकलसन—एक दुर्घटना .....

नेपोलियन—तुम सकुशल खड़े हो, फिर दुर्घटना ?

निकलसन—सम्राट मैं जानता हूँ कि मेरे अपराध का दण्ड मृत्यु है, किन्तु उसके पहले मैं कुछ कहने की इजाजत चाहता हूँ।

नेपोलियन—इजाजत है।

निकलसन—जब मैं डाक लेने जारहा था, रास्ते में मुझे एक लड़का मिला। उसने मुझ से मित्रता की और मित्र के कर्तव्य को निभाने का विश्वास दिलाया। मेरा घोड़ा जब ठोकर खाकर घायल और

बेकार हो गया, तो उसने मुझे अपना घोड़ा दिया, अपनी बन्दूक दी, और अपनी याद दिलाने के लिए मेरे पास एक रूमाल छोड़ गया है, देखिए। [रूमाल सामने रख देता है। नेपोलियन का इशारा पाकर पिकोते उसे उठा लेता है]

पिकोते—यह तो किसी स्त्री का रूमाल मालूम होता है, सम्राट !

नेपोलियन—डाक चुराली गई। वह जरूर शत्रु का गुप्तचर था। नालायक ! मृत्यु तेरे लिए यथेष्ट सजा नहीं होगी। बहुत बड़ी हानि की है तूने अपने देश की।

निकलसन—सर्वेश्वर ! मैं मरने से नहीं डरता। मेरी अन्तिम आकांक्षा है एक बार उस विश्वासघातक को पा जाता तो·····

नेपोलियन—चुप रहो। कोई है ?

[दो संतरी आ जाते हैं] निकलसन बन्दी कर लिया जाय और देखो पिकोते ! इस कापुरुष को ले जाकर खाना खिलाओ, शराब पिलाओ और जब उसके होशोहवास ठिकाने आवें, तो न्याय के लिए फिर हमारे सामने उपस्थित करो।

पिकोते—जो आज्ञा।

[पिकोते इत्यादि जैसे ही उसे ले जाना चाहते हैं, उसी रमणी की ऊपर से आवाज आती है]

युवती—पिकोटे !

निकलसन—यह किसकी आवाज है ?

पिकोते—एक स्त्री-अतिथि मुझे बुला रही है।

निकलसन—यह उसी लड़के की आवाज है, जिसने मेरे साथ विश्वासघात किया है। मैं अभी उसके दो टुकड़े कर डालूंगा।

नेपोलियन—निकलसन, तुम बन्दी हो। तलवार नीचे रख दो। पिकोते, यह रमणी हमारे सामने हाजिर की जाय।

पिकोते—जो आज्ञा।

(प्रस्थान)

नेपोलियन—तो उस समय तुम इतना भी नहीं जान सके कि तुम्हारे साथ

विश्वासघात करने वाला एक लड़का था या एक रमणी ?

[पिकोते उस युवती को लेकर आता है। निकलसन अपनी तलवार से उस पर आक्रमण करता है। वह नेपोलियन की ओर दौड़ पड़ती है। वह उसे पीछे ले लेता है, निकलसन लज्जित-सा वहीं खड़ा रह जाता है।]

नेपोलियन—निकलसन, ठहरो ! एक सेनाध्यक्ष की यहां तक स्पर्धा हो सकती है, इसे मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। एक अबला पर तलवार उठाते तुम्हें लज्जा नहीं आती !

निकलसन—अबला नहीं, सर्वेश्वर ! यह वही लड़का है। जिसने मुझे धोखा दिया है। यह वही गुप्तचर है जिसने डाक चुराई है।

युवती—लेफ्टिनेन्ट ! तुम भूल रहे हो। तुम्हारे साथ विश्वासघात करने वाला मेरा भाई होगा, जो आस्ट्रिया के जासूसी विभाग में काम करता है। उसकी सूरत मुझ से बहुत मिलती जुलती है। उसके धोखे में तुम मेरे ऊपर क्यों अत्याचार कर रहे हो ?

नेपोलियन—निकलसन ! तुम यहां से जा सकते हो।

[निकलसन, पिकोते आदि चले जाते हैं]

नेपोलियन—हां, तो तुमने कहां छिपा रक्खी है हमारी डाक, सुन्दरी ?

युवती—(साश्चर्य) मैंने ?

नेपोलियन—हां, तुमने चोरी की है, मर्द के वेश में तुमने हमारे लेफ्टिनेन्ट को धोखा दिया है, उसे डाक से वंचित किया है और हम यह भी जानते हैं तुमने उसे कहां छिपा रक्खा है।

[उंगली से संकेत करता है, युवती सहम जाती है] वह देखो तुम्हारी फ्राक के नीचे छिपा हुआ कागज़ का बंडल। छिपाने की कोशिश न करो, हम यहीं बैठे हुए उसे स्पष्ट देख रहे हैं।

युवती—(रोकर) आप मेरे साथ कैसा उपहास कर रहे हैं सम्राट ? मैंने सुना था वीर नेपोलियन स्त्रियों पर अत्याचार नहीं करता।

नेपोलियन—चुप रहो। रमणी के आंसू हमारी आंखों में कोई मूल्य नहीं रखते। तुम शायद जानती नहीं इन आंसुओं को देखकर नेपोलियन

कितना निर्मम हो जाता है।

युवती—मैं आप की डाक के विषय में कुछ नहीं जानती।

[रूमाल निकाल कर आंसू पोंछने लगती है। वह उसे छीन लेता है।]

नेपोलियन—देखू यह रूमाल! तुमने उसे भी तो एक रूमाल दिया था? बिलकुल ऐसा ही, (सूंघकर) खुशबू भी बिलकुल ऐसी ही? क्या अब भी तुम अस्वीकार करोगी कि डाक तुमने नहीं चुराई? (कुछ देर बाद) तुमने देखा हमने कितनी आसानी से तुम्हारे हाथ से रूमाल छीन लिया? याद रखना, तुम्हारी फ्राक में से अपनी डाक छीन लेने में भी हमें अधिक कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ेगा।

युवती—तो क्या आप एक अबला पर बल प्रयोग करेंगे।

नेपोलियन—हां कर सकते हैं, यदि देश के लिए आवश्यक हो।

युवती—अच्छा, मैं आपकी डाक वापिस कर दूंगी। मुझे आज्ञा दीजिए, मैं ऊपर जाकर उसे ले आऊं।

नेपोलियन—हम भी तुम्हारे साथ ऊपर चलेंगे अथवा उसके पहले हमें अपने सिपाहियों को भेज कर तुम्हारे कमरे की तलाशी ले लेनी होगी। कोई है?

युवती—ठहरिये, आपकी डाक वहां नहीं है।

नेपोलियन—हम जानते हैं हमारी डाक वहां नही है और हमने तुम्हें यह भी बता दिया है कि तुमने उसे कहां छिपा रक्खा है।

युवती—मैं आपकी डाक वापिस कर दूंगी, किन्तु उसमें से केवल एक पत्र अपने पास रखने की आज्ञा चाहती हूं।

नेपोलियन—क्या मैं जान सकता हूँ कि तुम्हारी मांग उचित है?

युवती—नहीं, और इसी लिए आपको उसे मानना होगा। क्या मैं यह जान सकती हूँ कि आपकी सारी मांगें उचित हैं? क्या मैं यह जान सकती हूँ कि यह उचित है कि सैकड़ों जानें रोज इस लिए बलिदान हों कि आपकी आकांक्षा पूरी हो, आप समस्त यूरोप के सम्राट बना दिये जायें। मेरी भी तो एक छोटी सी प्रार्थना है एक निस्सहाय अबला की प्रार्थना, संसार के सब से बड़े वीर के

सामने। (चरणों पर गिर पड़ती है)

नेपोलियन—उठो रमणी, नेपोलियन चरणों पर गिरने वालों से घृणा करता है। बहस करके हम अपना समय नहीं गंवाना चाहते। तुम डाक दोगी या सचमुच हमें तुम्हारे साथ बल प्रयोग करना होगा?

युवती—(कांपती हुई) सम्राट नेपोलियन ···का ···बल ···एक ···अबला ···के साथ

नेपोलियन—(करुणा भरी दृष्टि डालते हुए) नहीं, नहीं, हम तुम्हारे साथ जबरदस्ती नहीं करेंगे। हमारे पास आओ, इधर देखो, आंखों से आंखें मिलाओ।

[वह मंत्र-मुग्ध सी वैसा ही करती है] तुम आस्ट्रिया के जासूसी विभाग में काम करती हो?

युवती—नहीं।

नेपोलियन—फिर इतनी बड़ी विपद तुमने क्यों मुफ्त मोल ली?

युवती—मैं जिससे प्रेम करती हूँ उसकी उन्नति के लिए। वह आस्ट्रिया के जासूसी विभाग में नौकर है।

नेपोलियन—तुम्हारा जीवन और तुम्हारी अस्मत उसकी धरोहर है?

युवती—जी हां।

नेपोलियन—तो क्या तुम यह चाहोगी कि तुम्हारी सर्वश्रेष्ठ सबसे अधिक प्रिय वस्तु, तुम्हारे प्रेमी की धरोहर एक उन्मत्त फ्रांसीसी सिपाही के कदमों के नीचे रौंद दी जाय? क्या तुम यह चाहोगी कि नेपोलियन, जिसे तुमने अभी-अभी संसार का सबसे बड़ा वीर कहा है, तुम्हारी हठ के कारण अपनी उस कीर्त्ति को कलंकित करे, जिसे आज तक संसार का दूसरा सेना-नायक नहीं पा सका। डाक की हमें आवश्यकता है और चाहे जैसे हो हम उसे तुम से ही लेकर छोड़ेंगे। फिर क्या तुम यह चाहोगी कि संसार की समस्त स्त्री जाति को एक दिन कहने का अवकाश मिल जाय कि नेपोलियन ने भी स्त्री पर अत्याचार किया था? सुन्दरी! मैं प्रार्थना करता हूं मेरी डाक वापिस दे दो।

युवती—(बण्डल फेंकती हुई) सम्राट! यह लो अपनी डाक। (रो पड़ती है) मैं जान गई क्या है तुम्हारी शक्ति का रहस्य। तुम

केवल अपना विश्वास करते हो, केवल अपने लिए लड़ते हो, और केवल अपने लिए विजय पाते हो और तुम में दूसरे का हृदय बदलने की अद्भुत शक्ति है। मैंने तुम से हार मानी। आज पहली बार मैं तुम्हारा अभिवादन करती हूँ।

नेपोलियन—कोई है। (दो सन्तरियों का प्रवेश) लेफ्टिनेन्ट निकलसन हाजिर किया जाय।

[दोनों का प्रस्थान। नेपोलियन अपनी डाक सम्हाल लेता है। उसके बाद निकलसन का प्रवेश] निकलसन! इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हें धोखा देने वाला इसका भाई ही है। तुम्हारा कर्तव्य है कि उसे पकड़ कर न्याय के लिए हमारे सामने पेश करो। तुम जानते हो कि फ्रांस और इस युद्ध के भाग्य का निर्णय बहुत हद तक उस डाक पर निर्भर है। हमें विश्वास है कि तुम अपने को अपनी मातृभूमि के लिए अयोग्य नहीं प्रमाणित करोगे। जाओ, अपना धर्म पालन करो। जब तक तुम उसे नहीं पकड़ सको, न तो फ्रांस की सीमा में कदम रखना और न अपनी सूरत ही हमें दिखाना।

निकलसन—जो आज्ञा।

नेपोलियन—हमें तुम्हारे लिए दुःख है, किन्तु हम जानते हैं कि युद्ध के नियमों से तुम अपरिचित नहीं हो। जाओ, अपना फर्ज अदा करो।

निकलसन—जो आज्ञा।

[नत-मस्तक प्रस्थान]

युवती—इससे क्या फल निकलेगा, सम्राट!

नेपोलियन—जो अपने कर्तव्य को भूल कर अपनी मातृभूमि के नाश का कारण हो, उसे जीने का कोई अधिकार नहीं। इसे गोली का निशाना बनाकर हम देश की बारूद नष्ट करना नहीं चाहते। हम चाहते हैं जीते जी ही यह अपने पापों का फल भोगें।

युवती—फिर मेरे लिए क्या आज्ञा है?

नेपोलियन—तुम शत्रु की गुप्तचर हो। तुम्हें प्राणदण्ड मिलेगा।

युवती—लेकिन मैंने डाक तो वापस करदी है सम्राट !

[नेपोलियन की ओर देखकर वह कांप उठती है]

नेपोलियन—(हंसकर) अच्छा, हम तुम्हें नहीं मारेंगे। अगर तुम नहीं रहीं, तो नेपोलियन के साथ अपने राजा की तुलना करके, उसकी कद्र कौन करेगा ? हम चाहते हैं, संसार में ऐसे लोग जीवित रहें, जो नेपोलियन को स्वयं जानने का दावा कर सकें।

युवती—यदि मैं नेपोलियन के शत्रु को नेपोलियन के उन रहस्यों से अवगत करदूं, जिन्हें मैंने अभी-अभी जान लिया है, तो ?

नेपोलियन—हमें इसकी चिन्ता नहीं। नेपोलियन की शक्ति के अभी लाखों रहस्य हैं, जिन्हें संसार ने न जाना है और न कभी जान सकेगा। इसके अलावा अगर दुनिया विजय पाने की अभिलाषा से हमारा अनुसरण करे, तो हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि उसके बाद नेपोलियन केवल फ्रांस का ही नहीं, वरन् समस्त संसार का पथ-प्रदर्शक हो जायगा।

सुन्दरी ! तुम स्वतन्त्र हो। आओ, हम तुम्हें तुम्हारे कमरे तक पहुंचा आएं।

———

हीरे का टुकड़ा

दिसम्बर, १९४३

हीरे का टुकड़ा

प्रवेश—औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुग़ल शक्ति जिस तीव्र गति से अवनति की ओर गिरती जा रही थी, उसका अनुमान करना कठिन है। नादिरशाह ने आकर दिल्ली राज-स्तम्भ को खोखला कर दिया था और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण ने उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले थे।

मुग़ल राज-प्रणाली बलहीन, निरर्थक एवं अव्यवस्थित थी। छोटे राज्यों और संकुचित जातियों ने स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी थी। एक ओर अवध, हैदराबाद और बंगाल ने दिल्ली की बलहीनता का लाभ उठा कर अपनी-अपनी मसनद अलग कर ली थीं, दूसरी ओर राजपूत एवं सिख जातियों ने मुग़ल आधिपत्य को मानना अस्वीकार कर दिया था। उधर मैसूर में हैदरअली ने अपनी कार्य्य-चतुरता से अपने को आर्य राजा के स्थान पर स्थित कर लिया था और अंग्रेजों का प्रादुर्भाव हो ही चुका था।

तात्पर्य यह है कि भारत-आधिपत्य के लिए एक महाप्रलय प्रतिज्वलित हो चुकी थी और चारों ओर से ज्योतिप्रिय पतङ्ग आकर उसमें अपनी आहुति दे रहे थे।

उसी समय दक्षिण में एक महाविक्रांत शक्ति का आविर्भाव हुआ। उसका नाम था मराठा जाति। उसकी प्रखर गति के सामने जो आया, धूल की तरह उड़ गया। अखिल भारतीय साम्राज्य की स्थापना करने के लिए वे तत्कालीन भारत के छोटे-छोटे राज्यों से चौथ लेते थे और उस चौथ का नाम "जबरदस्ती या लूट खसोट" न था, वरन् वह था उनकी शक्ति का परिचय, लोगों के हृदय में आक्रांत भाव उत्पन्न करने की व्यवस्था और भारतीय साम्राज्य स्थापित करने की पौलिसी।

बङ्गाल पर अधिकार प्राप्त करने के लिए इनका झगड़ा बहुत दिनों से चला आरहा था और ये बारबार बङ्गाल आक्रमण के लिये जाते, किन्तु बङ्गाल मसनद उन्हें सहर्ष चौथ चुका देती और झगड़ा बढ़ाना नहीं चाहती। एक बार अलिवर्दी खां ने चौथ देना अस्वीकार किया और इसी का परिणाम था कि पेशवा बालाजी बाजीराव ने पण्डित भास्करराव के आधीन बहुत बड़ी सेना भेजी, नवाब की उद्दण्डता का फल देने के लिये।

× × ×

स्थान—वर्धमान में नवाब अलिवर्दी खां का शिविर।

समय—अर्ध-रात्रि।

[नवाब का नवासा सिराजुद्दौला एक पलङ्ग पर अचेत-सा पड़ा हुआ है। बहु रेखांकित मुख एवं किसी बहुत बड़ी दुर्भावना से अभिभूत वृद्ध अलिवर्दी खां इधर उधर पद-चारणा कर रहा है। सिराजुद्दौला की अवस्था विचित्र-सी है। कभी उसे होश आता है और कभी फिर अचेत होजाता है]

सिराजुद्दौला—दादू साहब! भूख और प्यास के मारे छाती फटी जा रही है, थोड़ा सा पानी ही मंगवा दीजिये।

अलिवर्दी खां—चारों ओर से मराठा अनीकनी ने हम लोगों को घेर रक्खा है। हमारे शिविर से एक-एक बून्द पानी तक वे लूट ले गये हैं। पानी···पानी···कहां से लायें पानी? (फिर कुछ पदचारणा करके)

जिनके आश्वासनों का विश्वास करके हमने मराठा राजदूत को निकाल कर उनका अपमान किया, चौथ देना अस्वीकार किया, वही मीरजाफ़र दूर खड़ा तमाशा देख रहा है। वही मुस्तफा खां अब तक सहायतार्थ नहीं पहुंचा।

सिराजुद्दौला—दादू साहब! अब नहीं सहा जाता। आह! एक बून्द पानी! (अचेत हो जाता है)।

अलिवर्दी खां—खुदा, खुदा! तेरे असीम साम्राज्य में इतना बड़ा अन्याय नहीं हो सकता। स्वर्ण उगलने वाले बङ्गाल का भाग्य-निर्माता क्या आज एक बून्द पानी का प्रबन्ध नहीं कर सकता? एक दिन इस बालक की छोटी सी इच्छा भी पूरी करने के लिए इस अलिवर्दी ने आकाश पाताल एक कर दिया था और आज……।

(एकाएक सिराज को देखकर)

यह क्या? बेहोश, बिलकुल बेहोश! सिराज! बोल बेटा, एक बार आंखें खोलकर देख, एक बार दादू साहब कह कर पुकार। (उद्विग्न भाव से) तब क्या एक चुल्लू पानी के बिना हमारा सिराज तड़प-तड़प कर मर जायगा? खुदा! तब क्या तुम सचमुच वृद्ध अलिवर्दी की गोद खाली कर दोगे, क्या सचमुच उसके जीवन-दीपक को बुझा दोगे? (कुछ सोचकर)।

नहीं, नहीं, हम यह नहीं होने देंगे, हम इसे नहीं मरने देंगे, चाहे जैसे हो इसकी जीवन-रक्षा करेंगे।

(मीरखां का प्रवेश) देख रहे हो मीरखां! एक चुल्लू पानी के बिना मेरा सिराज दम तोड़ रहा है। जाओ, कहीं से थोड़ा पानी लाओ।

मीरखां—शिविर में बिलकुल पानी नहीं है, जहांपनाह! मराठों ने हमें चारों ओर से घेर रक्खा है।

अलिवर्दी खां—संधि का प्रस्ताव भेजो। दौड़े हुए मराठा छावनी जाओ। रुपये मांगे, दो: राज्य मांगे, अर्पण करो; किन्तु कहीं से थोड़ा पानी लाओ।

मीरखां—जो आज्ञा! (प्रस्थान)

अलिवर्दीखां—(सिराज के पास बैठ कर) सिराज, मेरे लाल ! यह, क्या इस के मुख पर मृत्यु की कालिमा क्यों छाई जा रही है। अरे, कोई है। थोड़ा-सा पानी, पानी·····

जानकीराम—(प्रवेश करके) यह लीजिये जहांपनाह, ईश्वर का आशीर्वाद। इसे पिला कर शाहज़ादे की जान बचाइये।

अलिवर्दी खां—कौन जानकीराम मन्त्री ! लाओ भाई, जल्दी करो।

[दोनों सिराज के मुख पर जल के छींटे मारते हैं। थोड़ी-सी परिचर्या के बाद वह उठ बैठता है और पानी पीता है]

अलिवर्दी खां—जानकीराम ! मेरे भाई, शत्रु से घिरी हुई इस छावनी में तुम्हारे सिवाय और कोई सहारा नहीं। कब तक हम यहां भूखे-प्यासे पड़े रहेंगे।

जानकीराम—इस थोड़े से पानी का मूल्य जानते हैं जहांपनाह ! दस हज़ार रुपये। एक मराठा सैनिक को इतने रुपये देकर मुश्किल से यह ला सका हूँ।

[अलिवर्दी खां विशेष चिन्तित हो फिर पदाचारणा करने लगता है]

अलिवर्दी खां—देखा है, इस शिविर के बाहर अन्धकार जानकीराम ! उससे कहीं अधिक अन्धकार है इस बूढ़े के वक्षस्थल के भीतर। एक बार मुस्तफा खां से क्षमा-याचना करनी ही होगी।

सैनिक—(प्रवेश करके) सेनापति मुस्तफा खां शिविर-द्वार पर उपस्थित हैं। आने की आज्ञा चाहते हैं।

अलिवर्दी खां—सम्मान के साथ ले आओ।

[सैनिक का प्रस्थान और मुस्तफा खां का प्रवेश]

मुस्तफाखां—जहांपनाह ! बन्दगी !

अलिवर्दी खां—और हमारा नज़राना, मुस्तफा !

मुस्तफाखां—यह निर्धन अफगान आपके सामने क्या नजराना उपस्थित कर सकता है, जहांपनाह !

अलिवर्दी खां—क्यों मित्र, अपनी तलवार क्यों नहीं नज़राने में देते ?

मुस्तफाखां—(आश्चर्यान्वित होकर) जहांपनाह !

अलिवर्दी खां—मुस्तफा ! आज हम दो दिन से भूखे हैं।

मुस्तफाखां—जहांपनाह दो दिन से भूखे हैं ?

अलिवर्दी खां—सुनोगे, क्यों ? मराठों ने हमारी छावनी से एक-एक बून्द जल तक लूट लिया है। यह बालक अभी अभी पानी के बिना मरा जा रहा था। सुनो मुस्तफा ! यदि हमसे कोई भूल हो गई है, तो उसकी क्षमा मांगते हैं। आसानी से क्षमा कर सको तो कर दो, वर्ना इस निशीथ अन्धकार रात्रि में अपनी तलवार मेरे हृदय के उस पार करदो। कोई नहीं जानेगा कि बङ्गाल का नवाब असहाय होकर तुम्हारे चरणों पर गिरा था और तुमने····

मुस्तफाखां—शांत होइये जहांपनाह ? मुस्तफा खां मनुष्य है। वह अपनी छाती में हृदय रखता है और हृदय में दर्द और उस दर्द के साथ आंखों में आंसू। मैं इस हृदय-विदारक दृश्य को अब नहीं देख सकूंगा। आपने अभी-अभी मुझ से मेरा नजराना तलब किया था, यह लीजिये अपना नजराना।

(अपनी तलवार अलिवर्दी के चरणों पर रख देता है) स्वयं शैतान भी यदि आपके विरुद्ध सिर उठावेगा, तो मुस्तफाखां उसका विरोध करेगा। मैं अपनी तलवार छूकर सौगन्ध खाता हूं कि कल प्रातःकाल मैं मराठों पर आक्रमण कर दूंगा।

मीर खां—(प्रवेश करके) जहांपनाह ! मैंने संधि करली है।

अलिवर्दी खां—(अवाक् सा) क्या संधि कर ली ?

मीर खां—जी हां, मराठा सेना अपने शिविर में प्रत्यागमन कर चुकी है। एक करोड़ रुपया पा जाने पर वे कल सुबह महाराष्ट्र वापिस चले जायेंगे।

मुस्तफा खां—संधि अब नहीं हो सकती, जहांपनाह ! क्या समझ लिया है उस भास्कर ने कि बङ्गाल कायरों का देश है, कि उसके मुंह से निकले हुये एक-एक शब्द को पालतू कुत्ते की भांति सिर झुका कर मानना होगा ! जाओ, कह दो उस कुत्ते से कि बङ्गाल में अभी मुस्तफाखां जीवित हैं और उसके पास अदम्य शक्ति रखने वाली

अफगान सेना है। मुस्तफा खां अपने बाहुबल से उसकी धज्जियां उड़ा देगा, उसमें साहस हो तो रण-भूमि में आकर बात करे।

मीर खां—किन्तु मेरा सिर संधि-रक्षा की जमानत है, जहांपनाह! पेशवा-प्रतिनिधि ने मेरे बूढ़े मस्तक को जमानत में रख कर ही अपनी सेना मोर्चे पर से हटा ली है और आपके बीस हज़ार सैनिकों के लिए अन्न और पानी भी साथ भेजा है।

मुस्तफा—धन्यवाद के साथ उसे वापिस कर दीजिये, दीवान साहब! सावधान! हमारी सेना का एक भी सैनिक उस अपवित्र दान को स्पर्श न करे।

अलिवर्दी खां—मुझे मीर खां के ऊपर आने वाली विपत्ति ने उद्विग्न कर दिया है, मुस्तफा! इतनी जल्दी अपना निर्णय न दो।

मुस्तफा—एक बार ध्यान देकर सोचें, जहांपनाह! यदि इस प्रकार आप मराठों की अनुचित मांग को पूरी कर देंगे, तो प्रति वर्ष फिर वे अपना न्यास मांगने आ धमकेंगे। मैं अपनी तलवार छूकर शपथ खाता हूँ कि मैं मीरखां की प्राण-रक्षा करूंगा। इस निर्णय में अब कोई परिवर्तन न होगा और मैं कल प्रातःकाल मराठों पर आक्रमण कर दूंगा।

अलिवर्दी खां—तुम लोग मसनद के शुभ-चिन्तक हो। जो उचित समझो करो। मेरी विचार-शक्ति पर पर्दा पड़ गया है। मैं यहां नहीं ठहरना चाहता। चलो मुस्तफा, मैं तुम्हारे खीमे में ही चलकर आराम करूंगा।

मुस्तफा—आइये जहांपनाह!

[जानकीराम और मीरखां के अतिरिक्त सब का प्रस्थान]

मीर खां—भाई जानकीराम! मेरे परिवार का भार अपने सिर ले मुझे मुक्ति दो। मैं उस मराठा पंडित की उदारता के बोझ को लेकर नहीं मरना चाहता। मैं उसकी विशाल हृदयता की लहरों में एक बेबस तिनके की तरह बहा जा रहा हूं। उसने मेरा विश्वास किया है और विश्वासघात के पाप को वहन कर जीना मैं नहीं चाहता।

मैं अपना सिर देने मराठा शिविर जा रहा हूं। (आलिंगन एवं प्रस्थान)

जानकीराम—अब मुर्शिदाबाद के गौरव-सूर्य को अस्त होने में अधिक विलम्ब नहीं है। भगवान् रक्षा करना। (प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

स्थान—मराठा शिविर।

समय—अपराह्न।

[पंडित भास्कर राव एवं ताना जी]

भास्कर राव—क्या कहा, अकस्मात नवाबी आक्रमण के कारण पांच सौ मराठा सैनिक वीरगति को प्राप्त हुए?

ताना जी—हां पंडित जी! थकी मांदी हमारी सेना जिस समय सुख-निद्रा के क्रोड़ में विश्राम कर रही थी, उसी समय मुस्तफा खां ने आक्रमण कर दिया। मैंने पहले ही कहा था कि बङ्गाल मसनद का अस्तित्व बहुत हद तक अफ़गान शक्ति के ऊपर निर्भर है और···

भास्कर राव—उसे हम जानते थे और जानकर ही हमने मुस्तफा खां के प्रस्ताव को ठुकरा दिया था। वीरता के नाम को हंसा देने वाला विश्वासघातक, जो तुच्छ मसनद के लालच में अपने स्वामी को आगे बढ़ाकर धोखा दे सकता है, ऐसे प्रभुद्रोही शैतान की ओर भास्कर मित्रता का हाथ नहीं बढ़ा सकता।

ताना जी—किन्तु मुस्तफा खां को अपना मित्र बना कर हम अपना उद्देश्य आसानी से सिद्ध कर सकते थे।

भास्कर राव—सुनो ताना जी! आज भारतवर्ष में जो महाप्रलय संघटित हो चुका है, उसमें वही साम्राज्य स्थिर रह सकता है जिसकी दीवारें सत्य और धर्म पर खड़ी होंगी। जिस राज्य का सिंहासन झूठ और विश्वासघात के ऊपर प्रतिष्ठित है, वह कच्चे धागे की तरह टूट कर अनन्त में विलीन हो जायेगा। मुस्तफा खां जैसे नीच

और विश्वासघातक की सहायता से हम मराठा राज्य की स्थापना नहीं करना चाहते, हम चाहते हैं मराठों के पवित्र और तप्त लहू को बहाकर मराठा सौरभ फैलाना।

ताना जी—फिर इस हत्यकांड का किस प्रकार प्रतिकार किया जायेगा ?

भास्कर राव—हूँ ! (कुछ सोच कर) हमारी निर्बुद्धि के कारण ही ऐसा हुआ। इतनी बड़ी प्रतारणा की आशा मैंने मीर खां से नहीं की थी। मानव-चरित्र की जानकारी का मुझे बहुत अभिमान था, किन्तु सचमुच मनुष्य को पहिचानना बहुत कठिन है, असम्भव है। (पदचारणा करके)

पांच सौ मराठा वीरों के मूल्य को चुकाना होगा। बुड्ढे नवाब को उसकी प्रतारणा का कठोर दंड देना होगा; ऐसा आदर्श दंड कि भविष्य में कोई मराठों के साथ विश्वासघात करने का साहस न कर सके। (जाते जाते रुक कर)

हां ताना जी ! मीरखां के छिन्नमस्तक को जो मेरे पास लाएगा उसे पारितोषिक की घोषणा कर दो।

ताना जी—जो आज्ञा (भास्कर का प्रस्थान) अब मेरे मन की साधना पूरी होगी। भारत की छाती पर अब केवल एक वीर जाति जीवित रहेगी और वह होगी मराठा जाति। शक्ति-हीन विलासी नवाबों को जीने का क्या अधिकार है ? क्यों वे बिना परिश्रम किये सुखमय जीवन व्यतीत करेंगे और पराक्रमी मराठा वीर सारे जीवन परिश्रम करके भी सुख के स्वांस नहीं ले सकेंगे। बङ्गाल से इस निर्बल और शक्तिहीन शासन को निकाल कर मराठा शक्ति को प्रतिष्ठित करना होगा।

सैनिक—(प्रवेश करके) नवाब के दीवान पंडित जी का दर्शन करना चाहते हैं।

ताना जी—कौन नवाब का दीवान, मीर खां ? आने दो। (सैनिक का प्रस्थान) किस अस्त्र से इस दुरात्मा की हत्या करनी चाहिये ? (कुछ क्षण के बाद)

तीर तलवार से, बरछे से ? नहीं। तब बन्दूक से ? बन्दूक ही ठीक है। कोई है, कहां है मेरी बन्दूक! (एक सैनिक बन्दूक दे जाता है) क्या समझ लिया है चाण्डाल ने कि प्राण-भिक्षा मांग कर मेरी क्रोधाग्नि से छुटकारा पा जायेगा। (मीर खां का प्रवेश) इधर आ नीच, विश्वासघातक !

मीर खां—क्यों व्यर्थ गाली दे रहे हो मराठा वीर ! मीर खां नीच नहीं है, विश्वासघातक नहीं है। यदि ऐसा होता तो आज तुम्हें अपना शीश अर्पण करने अपने पैरों नहीं आता।

ताना जी—अब तेरी चालाकी नहीं चलेगी, कापुरुष ! पांच सौ मराठा वीरों की आत्मा पुकार पुकार कर कह रही है "रक्त चाहिये।" सीधा हो नराधम !

मीर खां—और मीरखां भी प्राण-भिक्षा मांगने नहीं आया है बदज़बान मराठे ! मीरखां प्राण देने आया है। ले, उठा अपनी बन्दूक और बना मेरा निशाना।

[मीर खां छाती खोल कर खड़ा होजाता है और ताना उसे मारने के लिये अपनी बन्दूक उठाता है। इतने में भास्करराव आकर उसका हाथ पकड़ लेता है।]

भास्कर०—शांत हो ताना जी, शांत हो। आकाश की छाती चीर कर न जाने किस प्रकार यह हीरे का टुकडा पृथ्वी पर आगिरा है। उन्माद में आ कर इसका नाश न करो वर्ना इस महिमामय आदर्श के बिना मेदिनी की छाती सदा के लिये शुष्क और शुन्य हो जायेगी। मीरखां ! मनुष्य के ऊपर मेरी भयंकर अश्रद्धा हो गई थी, किन्तु आज तुमने समस्त मानव जाति को एक भयकर कलंक से बचा लिया। धार्मिक मुसलमान ! आज तुमने संसार को दिखा दिया कि सहस्रों पापियों के बीच अकेला बैठ कर एक साधु ईश्वर के आशीर्वाद को पा सकता है। भगवान की करुणा जिसके धवल मस्तक पर अपना आशीर्वाद बरसाती हो, उसके ऊपर भास्कर की तलवार नहीं चलेगी। जाओ विराट मानव ! तुम आज़ाद हो।

[मीर खां का तना हुआ सिर इस महानता से झुक गया और आंखों से आंसू की बूंदें टपक पड़ीं।]

———

इन्साफ़

जनवरी, १९४४

इन्साफ

स्थान—स्त्रियों का न्यायालय।

[अदालत आधुनिक ढंग से सजी हुई है। प्लेटफार्म के किनारे कटघरा है और उसके बीच पेशकार और दो अहलकार, जो स्त्रियां हैं, कुछ लिख रही हैं। एक ओर सरकारी वकील और दूसरी ओर वकील प्रतिवादी बैठी हैं। ये भी स्त्रियां ही हैं। बीच में एक बड़ी कुर्सी पर बैठी हुई जज स्त्री है। बारह सदस्यों का जूरी मंडल भी स्त्रियों का है। दो स्त्रियां चपरासी के वेश में नीचे खड़ी हैं।

जज और वकीलों के सिर पर सफेद विग झूल रहे हैं, किन्तु उनके काले, चमकीले, रेशमी बाल छिपाये नहीं छिपते। वे जहां तहाँ चमक रहे हैं। पीछे के बेन्चों पर कुछ दृष्टागण बैठे हैं जिनमें पुरुष भी हैं और स्त्रियां भी।]

सरकारी वकील—जूरी मंडल की प्रिय बहनों !.....

जज—मुझे आप के संबोधन में आपत्ति है, सरकारी वकील साहिब ! यह कोई गृहस्थ नहीं कि आप यहां "बहन" शब्द का उपयोग कर रही हैं। "जूरी मंडल की महामाननीया महिलाओं" का व्यवहार मेरे विचार में उचित संबोधन होगा।

सरकारी वकील—मुझे खेद है। माई लेडी एवं जूरी परिकर की महामाननीया महिलाओं ! आज आपके समक्ष संसार के सब से बड़े पापी का मुकदमा पेश होने वाला है। इस विषय में अपनी दलील मैं अभी अदालत के सामने पेश करूंगी।

जूरी—(एक साथ) वह दोषी है।

जज—बहनों ! ज़रा धीरज से काम लीजिये। दोषी यदि कुछ कहना चाहता है, तो हम उसे भी अवसर देंगे क्योंकि हम संसार को यह प्रदर्शित करना चाहते हैं कि स्त्रियों द्वारा भी न्यायालय में बड़े से बड़ा मुकदमा किया जा सकता है। हम अदालत में निष्पक्ष भाव से न्याय करेंगे और पूरा मुकदमा सुने बिना किसी भी धारणा को अपने हृदय में स्थान नहीं देंगे। पहले सरकारी वकील को आज्ञा दी जाती है कि वे अपनी बहस आरम्भ करें। उसके बाद वकील-प्रतिवादी को भी कहने का अवसर मिलेगा।

जूरी—जी हां, आप सच कहती हैं।

जज—चपरासी !

चपरासी—हुजूर।

जज—मुजरिम कटघरे में उपस्थित किया जाय।

वकील प्रतिवादी—मुझे इसमें आपत्ति है, माई लेडी !

जज—क्या ?

वकील प्रतिवादी—मुजरिम की सूरत और डीलडौल बहुत भयानक है। यह पुरुषों का न्यायालय नहीं, हमारा न्यायालय है। हमारा हृदय भीरू एवं कोमल होता है। मेरी प्रार्थना है कि उसकी अनुपस्थिति में ही उसका न्याय किया जाय।

जज—आपकी दलील बेसूद है, इसलिए मैं इसे रद्द करती हूं। इसके

अतिरिक्त आप को बहुत सावधानी से अपनी बात अदालत के सामने पेश करनी चाहिये। स्त्रियों की कोमलता और भीरूपन का वर्णन करते हुए आप अदालत पर आक्षेप करती हैं। आप अपना आक्षेप वापिस लें अन्यथा अदालत को अपमानित करने के अपराध में आप पर मुकद्दमा कायम किया जायेगा।

वकील प्रतिवादी—मैं अपने शब्द वापिस लेती हूँ किन्तु मैं प्रार्थना करूंगी कि मुजरिम की उपस्थिति में उसके साथ उचित न्याय नहीं हो सकेगा।

जज—मैं आपको बैठने की आज्ञा देती हूँ। (वह बैठ जाती है) मुजरिम उपस्थित किया जाय।

[दो चपरासी मुजरिम को लाकर कटघरे में खड़ा करते हैं वह बड़े डील-डौल का लम्बा चौड़ा आदमी है। उसकी आंखें लाल हैं, वह उन्मत्त सा प्रतीत होता है। उसने ज़री की टोपी और जूते पहिन रक्खे हैं। अचकन कमख्वाब की है और हाथ में लाल रंग का रूमाल है।]

जूरी १ली—अरी मेरा मां!

,, २री—इसकी आंखों से पाप की चिनगारी निकल रही है।

जूरी ३री—न्याय की आवश्यता नहीं। इसका मुख बता रहा है कि इसने जुर्म किया है।

,, ४थी—मुये की सूरत तो देखो।

,, ५वीं—पागल मालूम होता है, पागल।

,, ६ठी—पागल नहीं, शराबी है।

जज—(टेबुल पर हाथ पटक कर) शान्ति! (जूरी से) इसमें सन्देह नहीं कि इसने अपराध किया है और इसकी सूरत ही इसका सब से बड़ा प्रमाण है। दंड देने के पहले हम इसे सफाई पेश करने का अवसर देंगे, वर्ना लोग क्या कहेंगे। अच्छा, अब सरकारी वकील अपनी बहस आरम्भ करेगी। (स० व० खड़ी होती है) वकील साहब! इस दुरात्मा के विरुद्ध आपको जो कहना है, उसे जल्दी कह कर इसे नर्कलोक पहुंचाने की व्यवस्था कीजिये।

सरकारी वकील—माई लेडी एवं महामान्यवरा महिलाओ ! मेरी पहली दलील यह है कि जिस मनुष्य की आकृति इतनी भयंकर एवं खूंरेज हो, क्या वह फांसी के तख्ते के योग्य नहीं ?

जूरी—(एक साथ) अवश्व ! अवश्य !!

सरकारी वकील—जरा इसकी पोशाक तो देखिये।

जूरी—(एक साथ) घृणास्पद, घृणास्पद····

जूरी १ली—एक दम गोली मार देने के काबिल है।

सरकारी वकील—इसकी टोपी और जूतों का मुलाहिजा हो।

जूरी—(एक साथ हंस पड़ती है)

सरकारी वकील—आपकी अचकन देखिये और एक नजर आपके रेशमी रूमाल पर भी। क्या यह भद्र पुरुषों की श्रेणी में गिना जा सकता है ?

जूरी—(एक साथ) कभी नहीं, कभी नहीं, छी छी छी ·····

जज—मैं सरकारी वकील को आज्ञा देती हूं कि मुजरिम की पोशाक के विश्लेषण को छोड़कर उसके वास्तविक अपराध को प्रमाणित करने के लिये अपनी दलील पेश करें।

सरकारी वकील—जो आज्ञा। (टेबुल पर से कुछ कागज उठाकर) तीन अप्रैल को यह अपनी वृद्धा चाची के कमरे में आधी रात घुस गया और·····

[जज एवं जूरी का मुख लज्जा से लाल हो उठता है।]

जज—ठहरिये। क्या मैं पुरुष-द्रष्टागण से आशा कर सकती हूं कि वे अदालत के बाहर चले जायें ?

[पुरुष-द्रष्टागण उठ खड़े होते हैं]

सरकारी वकील—इसकी आवश्यकता नहीं है माई लेडी ! यदि आवश्यकता हुई तो मैं अपना बयान अश्लीलता से बहुत बचाकर पेश करूंगी, जिसे पुरुष द्रष्टागण नहीं समझ सकेंगे ! आप लोग बैठ सकते हैं। (वे बैठ जाते हैं) हां, तो यह नर-पशु तीन अप्रैल को अपनी चाची के कमरे में घुस गया और इस पागल ने लोहे की एक करछी से मारते मारते उसकी हत्या कर डाली।

जज—(मुक्ति की सांस लेकर) बस इतना ही ?

जूरी—(दांत पीस कर) नीच घातक।

[उन लोगों ने कागज़ पर कुछ लिखा]

सरकारी वकील—मुझे इस विषय पर अभी बहुत कुछ कहना है। उसके बाद ४ अप्रैल को यह नर-पिशाच दिन दहाड़े अपनी सुन्दर युवती पड़ोसन के सोने के कमरे में जा घुसा। (जज एवं जूरी लज्जा के मारे आंचल से मुख छिपा लेती हैं) माई लेडी ! यदि इस प्रकार आप लोग लज्जा से मुख छिपाती रहेंगी तो मैं अपनी बहस कभी नहीं समाप्त कर सकूंगी और न अदालत से किसी कारवाई की आशा की जा सकेगी।

जज—हम समझ गये। बयान आगे जारी हो !

सरकारी वकील—आप नहीं समझी मैं क्या कहना चाहती थी। मेरा मतलब है कि वह कापुरुष अपनी पड़ोसन के कमरे में घुस गया और उसके बाल पकड़ कर घसीट लाया। फिर इसने उसका सिर बिना अपराध ही दीवार पर जोर से दे मारा।

मुजरिम—मैं कुछ कहना चाहता हूँ····

जज—चुप रहो। वकील साहब ! बयान जारी रहे।

सरकारी वकील—वह बेचारी उस चोट को सहन नहीं कर सकी क्योंकि उस कोमलांगी को इतने भीषण प्रहार को सहने का अभ्यास नहीं था। अगले दिन वह मर गई। (जूरी की महिलाएं दांत पीसने लगती हैं) इतने पर भी इसे सन्तोष नहीं हुआ। वहां से बाहर निकलते ही इसने धर्म्मशाले का सन्दूक तोड़कर सारे रुपये चुरा लिये। उन रुपयों से मिट्टी का तेल खरीद कर इसने बगल वाले अनाथालय में आग लगा दी। मेरी अदालत से प्रार्थना है कि इसे गुरुतर दंड दिया जाय क्योंकि विशेष रूप से इसका जीवन स्त्री समाज के लिये हानिकारक है। स्त्रियों की हत्या करने का इसे रोग सा मालूम पड़ता है।

जूरी—दोषी ! पूर्णतया दोषी !!

जज—हां, मैं सहमत हूँ। प्राणदंड ही इसके लिए उपयुक्त सजा है, किन्तु पापी को पाप की तह तक पहुंचा देना ही अदालत का कर्तव्य है। यदि वकील प्रतिवादी इस विषय पर कुछ कहना चाहती है, तो उन्हें अवसर दिया जाता है।

वकील प्रतिवादी—(खड़ी होकर) माई लेडी, एवं महाआदरणीया महिलाओं सरकारी वकील की ओर से मेरे मुअक्किल के विरुद्ध जो बयान दिया गया है, उसके विरुद्ध मुझे कुछ नहीं कहना है। मैं स्वीकार करती हूं कि उस पर लगाये तमाम दोष अक्षरशः सत्य हैं। मैं अदालत का ध्यान केवल एक बात की ओर आकर्षित करना चाहती हूँ कि मुजरिम सात वर्षों से पागल है और एक लम्बे अरसे तक उसकी चिकित्सा पागलखाने में होती रही है। यह एक प्रमाणित सत्य है कि पागल हमेंशा पागल नहीं होता। उसके मस्तिष्क में पागलपन की लहरें यदा कदा आती हैं। जिस समय यह पागलखाने से मुक्त किया गया था, हो सकता है उस समय यह अच्छा हो, किन्तु इस समय इसे पागल ही कहना होगा। जिस चाची ने इसका पालन पोषण किया और जो इसे जीवन में सब से अधिक प्रिय थी, उसकी इसने हत्या कर डाली। इसने अपनी उस पड़ोसन का सिर दीवार से दे मारा जो इसकी, सर्वदा सहायक रही है, जिसका इसके साथ कभी कोई बैर नहीं था। धर्म्मशाले के रुपये चुराकर अनाथालय में आग लगा देने में मेरे मुअक्किल का कोई व्यक्तिगत लाभ नहीं था। अनाथालय के पुराने रजिस्टरों से प्रगट होगा कि इसे उस संस्था से दिलचस्पी थी, यह वहां चन्दा देता रहा है। इससे यह प्रमाणित होता है कि इसने जो किया है, पागलपन में किया है। इस लिये मैं अदालत से प्रार्थना करूंगी कि इसे कोई दंड देने की अपेक्षा चिकित्सा के लिए फिर पागलखाने भेज दिया जाय। (बैठ जाती है)

[जज और जूरी कानाफूसी करके कुछ लिखती है]

जज—हमने वकील प्रतिवादी की सारी बातें ध्यान पूर्वक सुनीं किन्तु खेद के साथ

कहना पड़ता है कि उसमें हमें कोई सार दिखाई नहीं दिया। मैं जूरी की महिलाओं के साथ इस निर्णय पर पहुंची हूँ कि, कम या अधिक, सारे पुरुष पागल होते हैं। मुजरिम भी एक असाधारण मनुष्य नहीं है। इसने जो किया है, पुरुष-सहज दिमाग़ी हालत में किया है। इसलिये हम इसके लिये प्राणदंड की सज़ा तजवीज़ करते हैं।

मुजरिम—मैं.....

जज—(डांटकर) बोलो क्या कहते हो ?

मुजरिम—मैं कुछ कहने की आज्ञा चाहता हूँ।

जज—आज्ञा है।

मुजरिम—मुझे भी सरकारी वकील के विरुद्ध कुछ नहीं कहना है। उन्होंने जो दोषारोपण किये हैं, मुझे स्वीकार हैं। मैंने अपनी चाची की हत्या की है, पड़ोसिन को भी मार डाला है, स्त्रियों से मुझे घृणा है। (जूरी में फिर कानाफूसी होने लगती है) धर्म्मशाले की चोरी और अनाथालय में आग लगाने के जुर्म भी मुझे स्वीकार हैं। अदालत से जो दंड मुझे मिला है, उसका भी विरोध मुझे नहीं करना है।

जज—तो फिर तुम क्या चाहते हो ?

मुजरिम—मैं एक प्रार्थना करना चाहता हूँ।

जज—क्या ?

मुजरिम—मेरे प्राणदंड की तिथि आज से तीन माह के बाद निश्चित कीजाय।

जज—क्यों ?

मुजरिम—मैं .....(कहते कहते रुक जाता है)

जज—हां हां कहो।

मुजरिम—मेरी स्त्री .....

जज—क्या तुम्हारे स्त्री भी है ?

मुजरिम—हां है, और वह ...यानि मैं बहुत जल्दी ही एक सन्तान का पिता होने वाला हूं।

[जज और जूरी चीत्कार करके खड़ी हो जाती है।]

जज—यह तुमने पहले क्यों नहीं कहा था ?

[जज और जूरी फिर कानाफूसी करती हैं]

जूरी—निर्दोष, बिलकुल निर्दोष।

जज—हमने अपना फैसला वापिस लिया। जाओ, तुम रिहा किये गये।

[देखा गया कि जूरी की दो महिलायें बुरी तरह रो रही हैं और आंचल से आँसू पोंछ रही हैं]

———

अस्पताल का कमरा

मार्च, १९४४

अस्पताल का कमरा

स्थान—अस्पताल में एक कमरा, जहां बीमारों से मिलने आये हुये आगन्तुक इन्तज़ार करते हैं।

[एक ओर कुछ कुर्सियां पड़ी हैं दूसरी ओर एक गद्देदार बेंच। बीच में एक मेज़ है जिस पर कुछ अखबार रक्खे हैं।। कुर्सियों पर दो युवक बैठे हैं, किन्तु बेंच खाली है। सामने की दीवार पर एक क्लाक टंगा है, उसमें दस बजे हैं।

यदा कदा नर्स और अस्पताल के कर्म्मचारी एक ओर से आते हैं, और दूसरी ओर चले जाते हैं। कुर्सी पर बैठा हुआ एक युवक अङ्गड़ाई लेकर लम्बी जम्हाई लेता है, मानों वह बहुत देर से बैठा हो। सामने की मेज़ पर से अखबार उठाकर वह पढ़ने लगता है।]

पहला युवक—(अखबार पढ़ता हुआ) "उम्र १६ वर्ष, मैट्रिक पास, हिन्दी,

उर्दू, और बंगला की ज्ञाता, घर के काम-काज में निपुण एक अति सुन्दर कन्या के लिये योग्य वर की आवश्यकता। दहेजू भी प्रार्थना-पत्र भेज सकते हैं।"

दूसरा युवक—दहेजू ?

पहला युवक—हां, दहेजू।

दूसरा युवक—यानि ?

पहला युवक—यानि जिसकी पत्नी मर गयी हो, रंडुआ, यानि विडोअर, समझे ?

दूसरा युवक—समझा ! तुम भी एक प्रार्थना-पत्र भेज दो ! तुम्हारे लिये तो यह स्वर्ण-अवसर है।

पहला युवक—मैं भी यही सोच रहा हूं। जिस दिन से विवाह हुआ है, एक दिन भी सुख और शान्ति नसीब नहीं हुई। रोज़ के डाक्टर और हकीम—नाक में दम आ गया है। विवाह क्या किया, मुफ्त की मुसीबत गले बांध ली।

दूसरा युवक—(व्यंगपूर्वक) और न कोई सन्तान ही हुई।

पहला युवक—इसलिये तीसरा विवाह किया था किन्तु भाग्य यहां भी दगा दे गया।

दूसरा युवक—क्षमा करना, विवाह तो तुमने इसलिये किया था कि पहली दो पत्नी नहीं रहीं। यार ! तुम भी बेज़ोड़ हो। कोई हरामख़ोर होता है, कोई मुफ्तख़ोर, तुम स्त्रीख़ोर हो। कोई स्त्री तुम्हारे यहां नहीं टिकती। क्यों व्यर्थ उस विज्ञापन वाली की जान के पीछे पड़े हो ?

पहला युवक—यदि नहीं टिकती तो इसमें मेरा क्या दोष ? उनके भाग्य का दोष है।

[अखबार फिर उठाकर देखने लगता है। कुछ देर के बाद बाहर से एक नर्स के साथ एक १७ या १८ वर्ष की तरुणी प्रवेश करती है। वह सुन्दरी है—गोरा रंग, छोटा क़द और दुबली पतली सी। उसे देखते ही मालूम होता है कि वह बहुत चिन्तित है।]

नर्स—आप यहीं बैठें। जब औपरेशन समाप्त हो जायगा, मैं आप को बुला लूंगी। (जाते २ रुक कर) भला क्या नाम बताया था आपने ? ..... आनन्द कपूर, कमरा नम्बर २४, क्यों ?

तरुणी—जी हां !

नर्स—आप का नाम ?

तरुणी—नीलिमा।

नर्स—अच्छा, आपको यथा-समय सूचना मिलेगी और आप अपने पति से मिल सकेंगी। जब तक आप इसी कमरे में बैठें।

[नर्स का प्रस्थान। नीलिमा बेंच पर एक किनारे बैठ जाती है और सिर झुकाये चिन्ता में प्लावित हो जाती है।]

पहला युवक—(अखबार पढ़ता हुआ) हिन्दी, उर्दू बंगला की जानकारी। (खड़ा हो जाता है) उठो।

दूसरा युवक—क्यों !

पहला युवक—घर चलें।

दूसरा युवक—अभी से ?

पहला युवक—अरे, हिन्दी, उर्दू, बंगला की जानकारी। रवीन्द्रनाथ ... बंकिमचंद्र शरद बाबू ..क्या समझे ? लड़की बंगला जानती है।

दूसरा युवक—जब यहां इतनी देर से बैठे हैं तो मिल कर ही चलेंगे। कई दिनों के बाद बेचारी को दर्शन देने का कष्ट किया और बिना मिले ही जाने को तैय्यार होगये ? भला उसके मां बाप क्या कहेंगे ?

पहला युवक—कहते क्या ? जब संबन्ध दूसरी जगह ठीक हो रहा है तो उनके कहने की कौम पर्वाह करता है ?

दूसरा युवक—आखिर वह तुम्हारी पत्नी है, अग्नि को साक्षी देकर एक दिन तुमने उसका पाणि-ग्रहण किया है। माना तुम्हारे हृदय में उसके लिये प्रेम नहीं किन्तु नैतिक कर्तव्य तो है। इसके अतिरिक्त तुम उस विज्ञापन वाली बालिका से कैसे विवाह कर सकते हो ?

पहला युवक—क्यों ?

दूसरा युवक—तुम दहेजू तो नहीं हो।

पहला युवक—करीब-करीब दहेजू ही होगया हूं। क्या तुम्हें उसके अच्छे हो उठने की आशा है ? पहले तो केवल बीमारी थी और अब मेरा बिल-पावर भी काम करेगा। कभी अच्छी नहीं हो सकती, असम्भव !

दूसरा युवक—और यदि अच्छी हो गई तो ?

पहला युवक—तो दहेजू बनने में ही कितना समय लगता है ?

नर्स—(प्रवेश करके) आप लोग १८ नं० के कमरे की मरीज़ा से मिलने अन्दर चल सकते हैं।

पहला युवक—(क्लाक देखता हुआ) इस समय.....

दूसरा युवक—(हाथ पकड़ कर उठाता हुआ) चलो, दस मिनट में आ जायेंगे।

पहला युवक—दस मिनट से अधिक समय तो नहीं लोगे ?

दूसरा युवक—नहीं।

पहला युवक—तब चलो।

[दोनों का नर्स के साथ प्रस्थान और दूसरी ओर एक मोटी सी रमणी का प्रवेश—उम्र लगभग ३५ वर्ष, सुन्दरता से दूर और दुखिया सी। वह इधर उधर घबराई सी देखती हुई खड़ी रहती है मानो उसे ऐसे स्थानों पर आने का अभ्यास नहीं।

नीलिमा सिर झुकाये चिन्ताग्रस्त बैठी रहती है और उसे उस रमणी की उपस्थिति का आभास उस समय तक नहीं होता जब तक वह उसके पास आकर स्वयं नहीं खड़ी हो जाती।]

रमणी—रोगियों से मिलने के लिये क्या इसी कमरे में इन्तज़ार करना पड़ता है ?

नीलिमा—(उसे बिना देखे ही) हां।

[रमणी पास की कुर्सी पर बैठ कर अखबार के पन्ने उलटने लगती है। पहले वाली नर्स प्रवेश करती है। उसे देखकर नीलिमा आकुलता से खड़ी हो जाती है।]

नीलिमा—क्या हाल है उनका ?

नर्स—हालत नाज़ुक है।

नीलिमा—कोई आशा ?

नर्स—अस्पताल की दीवार की एक एक ईंट में आशा का पैग़ाम होता है। यहां जो आता है, आशा लेकर ही आता है।

नीलिमा—मैं जानती हूं····· आशा के सिवाय अब मेरे लिये संसार में कुछ नहीं रहेगा·····

[उससे आगे नहीं बोला जाता है, गला रौंध जाता है। नर्स उसके पास जाकर सांत्वना देने का यत्न करती है।]

नर्स—इतनी अधीर न होइये। भगवान् करेगा आपके पति अवश्य अच्छे हो उठेंगे। डाक्टर साहब औपरेशन में बहुत माहिर हैं। बड़े-बड़े असाध्य केसेज़ को अच्छा करने में उन्हें सफलता मिली है।

नीलिमा—भगवान् करेगा जब तो !

[अन्दर घन्टी बजती है, नर्स का प्रस्थान। नीलिमा सोचती हुई किसी दुर्भावना से सिहर कर रो पड़ती है। पास की कुर्सी पर बैठी हुई आगन्तुका उसके पास बेंच पर आ बैठती है।]

रमणी—तुम्हारा कौन बीमार है, बहन !

नीलिमा—मेरे पति।

रमणी—कितने दिनों से बीमार हैं ?

नीलिमा—कल ही मोटर- दुर्घटना से बुरी तरह घायल होगये हैं। इसके पहले वे बिलकुल अच्छे थे।

रमणी—मेरे पति भी मोटर-दुर्घटना से घायल होकर चिकित्सा के लिये इसी अस्पताल में आये हैं। मैं भी उनसे मिलने आई हूं। घबराओ नहीं, बहन ! शान्ति के साथ भाग्य के निर्णय का इन्तज़ार करो।

नीलिमा—इन्तज़ार ही मुझ से नहीं किया जाता। जितनी देर बैठती हूं, उतना ही मन घबराने लगता है। आधा घंटा मुश्किल से काट सकी हूँ, मालूम होता है युग बीत गये।

रमणी—तुम्हारी उम्र में ऐसी आकुलता का होना स्वभाविक है। ऐसी

परिस्थिति और अवस्था में यदि मैं तुम्हारी जगह होती, तो मैं भी व्याकुल हो उठती। यौवन उच्छृंखल होता है।

नीलिमा—(उसकी ओर देखकर) यौवन के साथ क्या हृदय से अपनों का प्रेम भी चला जाता है?

रमणी—तुम इन बातों को अभी नहीं समझ सकोगी। यौवन एक नशा है, जिसमें एक अजीब खुमार होता है, आकांक्षा होती है, सपने और अरमान होते हैं। यौवन का उन्माद एक ऐसी कहानी है जिसका अन्त नहीं और एक ऐसा काव्य है जिसका छोर नहीं (उस रमणी के वक्तव्य का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह चारों ओर देखने लगती है) क्या देख रही हो?

नीलिमा—जिधर देखो रोगी, जहां सुनो रोना और आह, जिस ओर आंखें उठाओ सामने सूखे और मुरझाये हुए मुख। ओफ। अस्पताल·····का·····वातावरण भी कितना भयंकर होता है·····और·····इन्हीं चहारदिवारियों के बीच ये लोग उनके शरीर की दुर्दशा कर रहे होंगे, और यहां होते हुए भी मैं उनकी सहायता नहीं कर सकती, उनके पास जाकर खड़ी तक नहीं हो सकती। (रो पड़ती है)

रमणी—(आंचल से उसके आंसू पोंछते हुए) तुम्हें उनसे इतना प्रेम है?

नीलिमा—कैसे उनसे इतना प्रेम न करूं? मेरा संसार में कोई नहीं जिससे मैं हृदय की बात कह सकूं या उसके हृदय की सुन सकूं। मैं मन ही मन कुढ़ती हूं कि मैं इतनी असहाय हूं। (उद्विग्न होकर) यदि मेरा यह संबल भी छिन गया तो मैं किसके सहारे जीऊंगी? मैं घुल-घुल कर मर जाऊंगी।

रमणी—(कुछ भावुक सी होकर) और उसके बाद भी दुनिया से सांत्वना के दो शब्द सुनने को नहीं मिल सकेंगे।

नीलिमा—तुम जानती हो ऐसा होता है? क्या तुमने भी प्रेम किया है?

युवती—क्या मैं मनुष्य नहीं हूं? मैंने भी अपने पति से अगाध प्रेम किया है। उन दिनों मैं भी तुम्हारी तरह ही सोचा करती थी।

नीलिमा—क्या तुम्हें भी इसी तरह पति के बिना संसार सूना और नीरस लगता था ?

रमणी—हां, अब भी लगता है। तुममें और मुझमें विशेष अन्तर नहीं। यदि थोड़ा सा है, तो इतना ही, तुम कह सकती हो, मैं कह नहीं सकती। तुम्हारी पीड़ा बोल सकती है, मेरा दर्द खामोश पड़ा रहता है, वर्ना मैंने भी तुम्हारी तरह रंगीन सपने देखे हैं।

नीलिमा—मेरा जीवन तो बहुत दुखी है, बहन ! मैं रंगीन सपने क्या जानूं मेरे दिन सदा रोते ही कटे हैं। मेरा जीवन एक दिन भी नहीं मुस्कुरा सका। सुख के दिन जैसे ही आये, अरमानों का महल जैसे खड़ा हुआ, बिजली गिरी और सब मिस्मार होगया। दुख उठाने के लिये ही मैंने जन्म लिया है। मैं अभागिनी हूँ।

रमणी—भाग्य को कोसना मनुष्य की कमजोरी है क्योंकि उसके इरादों के आगे भाग्य कोई महत्व नहीं रखता। यदि तुम्हारे हृदय में सच्ची लगन है तो तुम विधाता के विधान से भी होड़ ले सकती हो। थोड़ी देर के लिये यही मान लो कि तुम्हारे पति अच्छे नहीं होते (नीलिमा का सांस रुक जाता है। वह अपने हृदय पर हाथ रख लेती है) और तुम संसार में अकेली रह जाती हो, तब भी तुम उनकी होकर ही जीवन व्यतीत कर सकती हो। यदि तुम्हारा प्रेम सच्चा है तो उनसे अलग रहकर भी तुम उन्हें नहीं खोती, क्योंकि सच्चे प्रेम का बन्धन सदा अक्षय रहता है।

नीलिमा—(घबराई सी) ओफ !

रमणी—और यदि तुम उनके साथ वृद्ध होने के लिये जीवित रहीं, तो तुम देखोगी, कि आज का तुम्हारा अभिसार कल अभिशाप हो जायेगा। जैसे २ वर्षों का बोझ तुम पर लदता जायेगा, वैसे २ अरमानों का अम्बार हलका पड़ता जायेगा।

नीलिमा—ऐसी बातें क्यों कह रही हो, बहन !

रमणी—मेरा तात्पर्य्य है कि यौवन में ही यदि वियोग मिलता हो तो उसे

दामन फैला कर लेना चाहिये। वियोग प्रेम की कसौटी है, वियोग में प्रेम अक्षय हो जाता है! ऐसी हालत में यौवन का उन्माद और मादकता कभी नहीं कम होती।

नीलिमा—ऐसा न कहो! बहन वियोग की मैं कल्पना नहीं कर सकती। वे जैसे भी हों जिस रूप में भी हों, मेरे होकर रहें, यही मेरी कामना है।

रमणी—चाहे उनके हृदय में तुम्हारे लिये प्रेम घृणा में बदल जाय किन्तु वे तुम्हारे होकर रहें. यही तुम्हारी कामना है?

नीलिमा—वे मुझ से बहुत प्रेम करते हैं। उनके-मेरे बीच घृणा का सवाल ही नहीं पैदा होता।

रमणी—किन्तु संसार में यह असम्भव भी तो नहीं है?

नीलिमा—असम्भव तो नहीं है, किन्तु ·····(असहाय सी) उनके बिना मेरा जीवन अधूरा है। वे मेरे लिये जीवन हैं मृत्यु भी, आशा है निराशा भी, सृष्टि हैं और प्रलय भी, संसार में जो भी है मेरे लिये उनके पास हैं।

रमणी—भारत की प्रत्येक नारी अपने पति के विषय में कल्पनाओं का ऐसा ही संसार निर्माण करती है, किन्तु कभी २ पति के संबंध की गई धारणा कितनी छलनामयी होती है, उसका अनुभव तुममें नहीं। विवाह होजाने के बाद मैं भी तुम्हारी ही तरह सोचते २ बौरा जाती थी, किन्तु आज वे मेरे दिन नहीं रहे। मेरी आशाओं पर कितना निर्मम तुषारपात हुआ है, वह मेरे दिल से पूछो। दो वर्षों से मुझे नहीं मालूम कि पति का सुख किसे कहते हैं। (सोचती हुई) सब स्वप्न की तरह समाप्त होगया। आज वे मेरी छाया की कल्पना तक से सिहर उठते हैं, उनके दर्शनों तक का सौभाग्य नहीं होता।

नीलिमा—क्या तुम अपने पति से अलग रहती हो?

रमणी—दो वर्षों से मैं अपने दिन मायके काट रही हूँ। उनकी बीमारी का तार पाकर आज ही यहां आई हूँ। (दीर्घश्वास) समय परिवर्तन-शील होता है।

नीलिमा—समय का ऐसा प्रभाव सच्चे प्रेम पर नहीं पड़ता।

रमणी—मालूम होता है तुम्हें अपने ऊपर बहुत विश्वास है।

नीलिमा—हो सकता है मेरा विश्वास एक भुलावा हो और तुम जो कहती हो वही सत्य हो, किन्तु इतना आश्रय भी पास न हो, तो मनुष्य किस सहारे जीए? तुम नहीं जानती मेरे दुख, पीड़ा और सूनेपन की सीमा को। मेरा संसार में कोई आधार नहीं, जिससे मैं स्नेह कर सकूं या जिस पर अपने अरमान चढ़ाकर दो घड़ी शान्ति की सांस ले सकूं। बताओ तो, कौन होगा मेरे जैसा बेबस, पराया और अकेला? (कहते कहते अकस्मात् रुक जाती है और उस रमणी की ओर केन्द्रित दृष्टि से देखने लगती है) एक बात कहूँ?

रमणी—कहो।

नीलिमा—मेरा विवाह नहीं हुआ है।

रमणी—(साश्चर्य) तुम्हारा विवाह नहीं हुआ है?

नीलिमा—नहीं। मैंने झूठ कहा था कि ये मेरे पति हैं। (रमणी के मनोभाव जानने के लिये उसके मुख की ओर देखती हुई) क्या तुम मुझ से घृणा करने लगी?

रमणी—नहीं, आज का तुम्हारा गुप्त-प्रेम कल वैवाहिक बंधन में भी तो परिणत हो सकता है।

नीलिमा—हां, ऐसा ही होगा, किन्तु इस समय तो मुझे यहां आने का अधिकार नहीं था। इस अधिकार को पाने के लिये ही मुझे उनकी पत्नी बनना पड़ा है वर्ना अस्पताल के कर्म्मचारी मुझे उनसे मिलने ही न देते।

रमणी—दुर्घटना के बाद क्या पहली बार ही मिलने आई हो?

नीलिमा—मैं कल भी आई थी, किन्तु हठात् सबके सामने अपने को उनकी पत्नी कहकर परिचय देने का साहस न कर सकी। उनका विवाह हो चुका है और मुझे भय था कि कहीं कोई उनकी पत्नी को न पहिचानता हो।.....देखा तुमने मैं कितनी असहाय हूं?

मैंने क्या तुमसे ग़लत कहा था कि मेरा संसार में कोई ऐसा नहीं, जिसे मैं अपने हृदय की सुना सकूं अथवा उसके हृदय की सुन सकूं ! कौन मुंह लेकर मैं इतनी नाजुक बात किसी से कह सकती हूँ ? कौन मेरे आंसुओं को सहानुभूति के दो शब्दों से पोंछ सकता है ? किसे मैं अपनी पीड़ा सुनाकर दो क्षण हृदय हलका कर सकती हूं ? बताओ तो कितना बेधक हो सकता है मेरा दुख, जिसे न कोई कहने वाला है और न सुनने वाला ही। न जाने क्यों मैंने अपना हृदय तुम्हारे सामने खोलकर रख दिया !

रमणी—कितने दिनों से तुम दोनों में प्रेम है ?

नीलिमा—(याद करने की कोशिश करती हुई) ठीक याद नहीं आता।

रमणी—तुम दोनों की पहली मुलाकात कहां हुई थी ?

नीलिमा—हमारे कालिज के सामने इनकी दूकान है। मैं अकसर इनके यहां चीजें लेने जाया करती। हमें मिलने का काफी मौका न मिलता, किन्तु जब भी हम मिल पाते तो मालूम होता कि स्वर्ग का सुख चरणों पर लोट रहा है। एक दिन मुझे एकाएक मालूम होने लगा कि मैं उनसे प्रेम करने लगी हूँ।

रमणी—इसमें तुम्हारा विशेष दोष नहीं दीखता, किन्तु तुम्हारे प्रेमी की ओर से उनकी पत्नी पर बड़ा अन्याय हुआ है। विवाहिता पत्नी की उपस्थिति में स्वयं किसी से प्रेम करने या दूसरे को प्रेम करने देने का उन्हें कोई अधिकार नहीं था।

नीलिमा—इसमें उनका कोई दोष नहीं। उनकी स्त्री उम्र में उनसे छः साल बड़ी है। वह दिल्ली के एक रईस की इकलौती कन्या है। धन के लालच में उनके माता-पिता ने उनका विवाह वहां कर दिया था। दो साल से उनकी पत्नी उनसे लड़कर मायके पड़ी हुई है। ऐसी अवस्था में यदि वे अपनी पत्नी से प्रेम नहीं कर सकते, तो उनका क्या दोष ?

[रमणी का मुंह फीका पड़ जाता है। वह आवाक् सी नीलिमा की ओर देखने लगती है।]

रमणी—तुमने क्या कहा उनकी दूकान है ?

नीलिमा—हां ।

रमणी—कालिज के सामने ?

नीलिमा—हां ।

रमणी—उनकी पत्नी दिल्ली की है और उम्र में उनसे बड़ी है ?

नीलिमा—हां ।

रमणी—उनका नाम ?

नीलिमा—आनन्द कपूर ।

[स्त्री वज्राहत सी स्तब्ध हो सिर पकड़ कर बैठ जाती है। उसी क्षण अस्पताल में अन्दर गये दोनों युवक वापस आते हैं और अपनी टोपी छतरी इत्यादि उठाकर बाहर चले जाते हैं। नीलिमा उनके आने पर एक टक अन्दर की ओर देखती है, इस आशा में कि शायद अब उसे जल्दी बुला लिया जाये। इसी कारण उसे रमणी के मुख पर भावान्तर का पता नहीं चलता।]

रमणी—सुनो, मेरी अन्तरात्मा कहती है तुम्हारे पति अवश्य अच्छे हो जायेंगे ।

नीलिमा—तुम्हारी वाणी सच हो, बहन !

रमणी—उसके बाद तुम्हारा क्या विचार है ?

नीलिमा—हम कल ही यहां से जा रहे थे, किन्तु मोटर-दुर्घटना के कारण हमें रुक जाना पड़ा। उनके अच्छे होते ही हम यहां से कहीं दूर चले जायेंगे—स्वप्नों के देश में, जहां कोई हमें अलग न कर सकेगा, जहां समाज के बंधन हमारे पथ में रोड़े बन कर बाधा न दे सकेंगे ।

रमणी—उनकी स्त्री पर कभी तुम्हें दया नहीं आई ? तुम तो यह जानती ही होगी कि पुरुष के लिये प्रेम उसके जीवन का केवल एक अंग होता है, किन्तु स्त्री के लिये प्रेम उस के सारे जीवनकी कमाई है।

नीलिमा—पर वे अपनी पत्नी से प्रेम तो नहीं करते ।

रमणी—कभी तो किया होगा।

नीलिमा—विश्वास नहीं होता। यदि किया भी हो तो उतना नहीं जितना वे मुझ से करते हैं और यही मेरा सबसे बड़ा सन्तोष है।

रमणी—जिस प्रकार आज वे अपनी पत्नी को छोड़कर तुम्हारे साथ जाने को तैय्यार हैं, उसी तरह कल तुम्हारा भी तो त्याग किया जा सकता है?

नीलिमा—आज जिसके लिये वे संसार को ठुकरा रहे हैं, कल उसी का त्याग कर देंगे? असम्भव!

रमणी—तो तुम्हारा विश्वास है कि वे तुम्हारा त्याग नही करेंगे?

नीलिमा—हां मुझे विश्वास है।

रमणी—और तुम उन्हें पाकर सुखी हो सकोगी?

नीलिमा—संसार में कौन ऐसा है जो उन्हें पाकर सुखी न होगा?

रमणी—उनकी स्त्री की कल्पना करके तुम्हें तो बड़ी ईर्षा होती होगी?

नीलिमा—बहुत होती थी। ऐसा मालूम होता था कि हृदय फट जायेगा, किन्तु जब मालूम हुआ कि उनका सारा प्रेम केवल मुझमे ही समाया है, तो मुझे उस बेचारी पर दया आने लगी।

[रमणी की आंखों में आंसू भर आते हैं]

रमणी—फिर भी उसके लिये कभी तुम्हारी आत्मा विचलित नहीं हुई?

नीलिमा—मैंने अपनी सूनी घड़ियों में अकसर सोचा है कि मैं उनकी पत्नी के साथ घोर अत्याचार कर रही हूँ, रहज़नी कर रही हूं, महापाप कर रही हूँ! किन्तु जब वे उसके साथ प्रेम करते ही नहीं, यदि मैं उसकी राह से हट जाऊं फिर भी उसके नहीं हो सकते, तब पाप और अत्याचार कैसा? फिर क्यों मैं अपने सुखों का बलिदान दूं? जब ईश्वर स्वयं मुझे कुछ दान देना चाहता है, तो क्यों न मैं उसे दामन फैलाकर स्वीकार करूं?

रमणी—तुम ठीक कहती हो। संसार में जीवन के लिये जितना ज़रूरी है; उतना हमें ज़बरदस्ती छीन लेना चाहिये। जीवनके प्याले से हमें जितना मिलता हो, उतना हाथ फैलाकर लेलेना चाहिये, किन्तु साथ

ही मेरा ऐसा विश्वास है कि दूसरे के सुख को छीन कर कोई स्वयं सुख नहीं उठा सकता। यदि वह ऐसा करता है तो जीवन के कुछ क्षणों के बाद ही उसे प्रतीत होगा कि जो सुख उसने किसी से छीना था, वह उससे दूर भागा जा रहा है। वह स्वयं किसी की राह का रोड़ा बन रहा है!

नीलिमा—मैं जानती हूं। मैं तुम से कितनी बार कहूं कि मेरे साथ ऐसा कभी नहीं होगा और यदि किसी दिन हुआ, तो तुम देख लेना, मैं खुद उस राह से हट जाऊंगी। किसी की राह का रोड़ा बनकर नहीं जीऊंगी।

[रमणी चिन्ताग्रस्त हो जाती है। स्तब्धता से नीलिमा फिर व्याकुल हो अन्दर की ओर देखने लगती है। दो एक बार रमणी के मुख से अनायास ही यह निकल जाता है "किसी की राह का रोड़ा बनकर नहीं जीऊंगी।" कुछ देर तक वह यही सोचती रहती है।]

रमणी—यहां रहकर भी तो तुम उन्हें पा सकती हो?

नीलिमा—किन्तु उनकी पत्नी.....

रमणी—उसकी चिन्ता न करो। उसकी जिम्मेदारी मेरे सिर रही।

नर्स—(प्रवेश करके) श्रीमती कपूर!

[इसके पहले कि वह रमणी कुछ सोच सके, नीलिमा नर्स के पास दौड़ जाती है। उसे उत्सुकता से देखने के अतिरिक्त रमणी को और कुछ नहीं सूझ पड़ता है।]

नर्स—बधाई! ऑपरेशन सफल हुआ। अब आप चलकर अपने पति को देख सकती हैं।

नीलिमा—(खुशी से पागल सी) कहां ...किस रास्ते से.....?

नर्स—(उंगली से संकेत करती हुई) वहां सामने वाले कमरे में।

[नीलिमा का दौड़कर प्रस्थान। जाती बार वह उस रमणी पर एक दृष्टिपात तक नहीं कर गई। जिसके लिये वह इतना विराट बलिदान दे रही थी उससे उसे ऐसे शुष्क व्यवहार की आशा न थी।]

नर्स—(रमणी के पास आकर) आप भी तो किसी से मिलना चाहती थीं?

रमणी—(अकस्मात चौंक कर) ओः ! हां, मुझे भी मिलना था, किन्तु .....
(क्लाक देखकर) अब देर होगई है फिर आऊंगी। (उठते हुए)
अच्छा, आप इतना बता सकेंगी इनके पति कैसे हैं ?

नर्स—अच्छे हैं, औपरेशन सफल हुआ।

रमणी—अब तो किसी बात का भय नहीं ?

नर्स—जी नहीं, वे बिलकुल अच्छे हैं।

रमणी—धन्यवाद ! मैं इतना ही जानना चाहती थी।

[अन्दर एक बार देखकर तेजी से प्रस्थान]

पहली भेंट

अगस्त, १९४३

पहली भेंट

प्रवेश:—

भगवान् बुद्ध के प्रादुर्भाव के बाद ही सारा भारतवर्ष बौद्धमय होगया था। आग की लपट की भांति यह धर्म्म सारे भारतवर्ष में फैल कर भारत के बाहर भी बढ़ने लगा था। उस समय बौद्ध कहाना अभिमान का विषय था, बौद्ध-संघों में जाकर धर्म्म-चर्चा करना सभ्यता की सबसे बड़ी परिभाषा थी।

हिन्दू धर्म्म के मेरुदंड को छोटी मोटी दो चार शक्तियों ने ही झुकने से बचा रक्खा था—उनमें से एक था कोशल का जिद्दी, अभिमानी और महापराक्रमी राजा, प्रसेनजीत। चारों ओर से बौद्ध-पीड़ित ब्राह्मण आकर उसके राज्य में आश्रय पाते, अपने धर्म्म को सुरक्षित रखते और मुक्ति की सांस लेते थे। ऐसा मालूम होता था कि सारे भारत का सनातन धर्म्म कोशल राज्य की हद में ही सीमित हो गया है।

एक बार नगर में ठहरे हुए बौद्ध-विहार की ओर भिक्षुकों के दर्शनार्थ

जाती हुई नरनारियों की टोली को देखकर राजा प्रसेनजीत के हृदय में भी बौद्ध भिक्षुकों को आहार के लिये राजभवन में आमन्त्रित करने की श्रद्धा जागी। बौद्ध भिक्षुक एक क्षुद्र हिन्दू के यहां जाकर भिक्षा मांग सकते थे, किन्तु आहार के संबंध में उनमें साम्प्रदायिक संकीर्णता थी। "जाति-बंधु ही श्रेष्ठ बंधु है" वाले सिद्धान्त में विश्वास करने वाले विहार के आचार्य ने राजा का निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया।

मानी प्रसेनजीत को जीवन में पहली बार अनुभव हुआ कि राजाज्ञा भी कभी २ ठुकरा दी जाती है। क्रोध के कारण वह पागल हो उठा। सारे संघ को उसी दिन राज्य-सीमा के बाहर निकाल कर भी उसे सन्तोष नहीं हुआ। वह कोई और बड़ा प्रतिकार करना चाहता था। ऐसा प्रतिकार, जिससे एक २ बौद्ध की आंखें नीची हो जावें, सारा देश जान जाए कि कोशलराज से टक्कर लेना कोई बच्चों का खेल नहीं है।

कपिलवस्तु की राजसभा में एक भयानक समस्या आ खड़ी हुई—या तो राजकन्या से प्रसेनजीत का विवाह अथवा युद्ध। एक ओर शाक्य-कुल और धर्म्म की विराट अमर्य्यादा, दूसरी ओर असंख्य निरपराध जीवों की हत्या और पराजय। सारा नगर शोक और चिन्ता मे ग्रस्त था। कौनसा हो सकता था वह उपाय जिससे राजकुल की प्रतिष्ठा बचाते हुए युद्ध न होने दिया जाए?

उधर प्रसेनजीत की हठ पूरी हुई, इधर कपिलवस्तु पर घिरे हुए संकट के घटाटोप बादल हट गये। प्रसेनजीत को सन्तोंष हुआ कि शाक्य-राज्य-कन्या ने उसके महल में पटरानी बनकर प्रवेश किया।

स्थान—कोमल राजधानी, श्रावस्ती, में राजा प्रसेनजीत का महा-सुसज्जित राजभवन।

× × × ×

अवसर—वसन्त-उत्सव एवं छोटे राजकुमार का तृतीय जन्म दिवस।

[राजप्रासाद के अन्दर महासमारोह होरहा है। नरनारियों का समूह उत्सव में मग्न है। सभी नाच गा रहे हैं, एक दूसरे पर अबीर-कुंकुम की वर्षा कर रहे हैं। भीषण नाद होरहा है। सुनाई नहीं देता कौन क्या कह रहा है।

धीरे-धीरे सिंहद्वार खुलता है, सोपान-पथ से रानी प्रवेश करती है और उनके पीछे-पीछे आते हैं महाराजा। रानी की गोद में उनका तीन वर्ष का कुमार है। वह उत्सव में उन्मत्त-सी हो रही है, कुमार को उछालते हुए प्रजा के सामने आ खड़ी होती है। प्रजागण राजा और रानी पर अबीर की वर्षा करने लगते हैं।

राजा— स्वस्ति ! स्वस्ति !! स्वस्ति !!!

[प्रजागण श्रेणी-बद्ध हो जाते हैं]

भाईयों ! अभी उत्सव समाप्त नहीं हुआ। मैं तुम लोगों के लिये भगवान् बुद्ध की चरणधूलि लाया हूं। (सोने की डिबिया को रानी की ओर बढ़ाते हुए) रानी ! यह पवित्र चरणधूलि इनके माथे पर लगा दो।

रानी— (साश्चर्य) मैं ?

राजा— हां हां, तुम।

रानी— नहीं राजन् ! आप। (टालने का यत्न करती हुई) देखो तो मेरा राजशेखर अबीर की वर्षा देखकर कैसा खुश हो रहा है ? देखो तो कैसे चमक रहे हैं इसके दोनों पद्म-लोचन ? ओफ ! कितना सौन्दर्य्य है इनमें ? (कुमार को चूमने लगती है)।

राजा— रानी ! स्वयं भगवान् की इच्छा है कि यह मंगलाशीस तुम्हारे हाथों बांटा जाए। लाओ, कुमार को मुझे दो।

[कुमार को अपनी गोद में लेना चाहता है, किन्तु रानी पीछे हट जाती है।]

रानी— नहीं राजन् ! मुझे क्षमा करें।

राजा— तुम्हारा जन्म शाक्य-कुल में हुआ है, श्रीबुद्ध के वंशज होने का तुम्हें मान प्राप्त है, स्वयं भगवान् का पुनीत रक्त तुम्हारी रगों में दौड़ रहा है, इसलिये तुम्हें ही यह प्रसाद अपने हाथों बांटना चाहिये। देखो, ये लोग तुम्हारी तरफ आंखें लगाये खड़े हैं।

रानी— महाराज ! मुझे क्षमा करें। यह काम मुझ से न हो सकेगा। (कुमार को हाथ में उछालते हुए प्रस्थान)

राजा— (प्रजा से) अच्छा, तुम्हारी अमानत हमारे पास रही। अब किसी दूसरे शुभ-अवसर पर रानी तुम्हें वह प्रसाद बांटेगी! अब तुम लोग कला-भवन चलो। कुमार की जन्म-तिथि के उपलक्ष्य में कपिलवस्तु से कुमार के मातामह शाक्यराजा के सभाकवि यहां पधारे हैं। मैं भी रानी को लेकर अभी आरहा हूं। फिर हम साथ बैठकर उनके गीति-काव्य सुनेंगे।

प्रजागण— जो आज्ञा।

[हलका सा कोलाहल होता है और एक एक-करके सब चले जाते हैं। रानी दूसरी ओर से प्रवेश करती है।]

रानी— रूठ गए महाराज?

राजा— नहीं तो, भला इसमें रूठने की क्या बात थी? हां, प्रजागण जरूर निराश होगये हैं। यदि तुम अपने कल्याणकरों से इन्हें प्रसाद बांट देती, तो तुम्हारा क्या बिगड़ जाता?

रानी— एक बात पूछूं, महाराज! बुरा तो न मानियेगा?

राजा— पूछो।

रानी— आप मुझे क्या समझते हैं?

राजा— देवी, साक्षात देवी! स्वयं भगवान का पवित्र रक्त तुम्हारी धमनियों में प्रवाहित है।

रानी— और इसीलिये आप अपने सामन्त शाक्यराज को अपनी लाल आंखें दिखला कर तलवार की ताकत से मुझे जबरदस्ती व्याह लाये हैं। क्यों? (राजा हंस पड़ता है) क्या आपके संसार में मैं अपनी जन्म-भित्ति पर ही खड़ी हूं? महाराज! इसके अतिरिक्त आपका मेरा कोई सम्बन्ध नहीं? इसी कारण मैं देवी हूँ, आपके महल की पटरानी हूँ? क्या इसी तरह आप मुझे अपने हृदय से सदा इतनी दूर रक्खेंगे?

राजा— (हंसता हुआ) नही रानी!

रानी— मनुष्य समझ कर तब क्या आप मुझे अपना नहीं कह सकते, महाराज! आप भी मनुष्य हैं, मैं भी हूं, क्या ऐसा नाता हमारे बीच नहीं रह सकता?

राजा— तुम जानती हो कि तुम्हारे जन्म-गौरव के कारण ही बौद्ध-संघ अब मेरा सम्मान करता है। सोलह वर्ष पहले की बात है—एक बार मैंने बौद्ध-संघ को अपने महल में आहार के लिये निमन्त्रित किया था, किन्तु उन्होंने मेरी श्रद्धा को ठुकरा दिया। उन्होंने कहा कि जाति बंधु के अतिरिक्त और कहीं का आहार वे ग्रहण नहीं करते।

रानी— उसके बाद मुझे ग्रहण करके आपने बौद्ध समुदाय में सम्मान पाया और जातीयता भी। (कुछ सोचते हुए) आपने अपनी मनचाही की, किन्तु जानते हैं महाराज, मुझे रातों नींद नहीं आती और दिनों चैन नही मिलता ?

राजा— जानता हूँ। कई बार रात में पागल की तरह तुम्हें प्रलाप करते देखा है। किन्तु ऐसा क्यों, रानी ?

रानी— मैं सोचती हूं, दिन रात सोचती हूँ·····मेरी इच्छा होती है·····

राजा— हां, क्या इच्छा होती है ?

रानी— मैं पागल हो जाऊंगी। हो जाऊंगी क्या, मैं पागल हो चुकी हूँ।

राजा— तुम क्या सोचा करती हो, रानी !

रानी— आप हंसेंगे तो नहीं ?

राजा— नहीं।

रानी— क्रोध भी नहीं करेंगे ?

राजा— नहीं।

रानी— मैं सोचा करती हूँ ·····(कहते-कहते रुक जाती हैं।)

राजा— (रानी के दोनों हाथ पकड़ कर) क्या सोचा करती हो रानी ? आज तो तुम्हें बताना ही पड़ेगा।

रानी— (राजा की ओर देखती हुई) अपने ये राजसी वस्त्र छिन्न भिन्न करके यहां से कहीं दूर भाग जाऊं।····· आपको याद होगा, आपकी सभा में एक दिन एक नर्त्तकी की नाचती-नाचती विवसना हो गई थी। उसी दिन आपकी आंखों के सामने मैंने उसका सिर मुड़वा कर उसे नगर से निर्वासित कर दिया था।

राजा— हां, याद है। उसके बहुत गिड़गिड़ाने पर भी तुमने उसे माफ नहीं किया था।

रानी— आज इच्छा होती है कि मैं भी वही नग्न-नृत्य करूं। देह के इस मिथ्या आवरण को छिन्न भिन्न करके और अपनी नंगी मूर्त्ति लेकर आपके सामने खड़ी होऊं; किन्तु, न जाने क्यों, मुझे ऐसा करने का साहस नहीं होता।

राजा— छोड़ो इन बातों को। चलो, कला-भवन चलें। तुम्हारे पीहर से कवि शेखर आये हैं, और लोग भी हमारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। आओ, वहीं चलकर उनके गीति-काव्य सुनेंगे, इससे तुम्हारा मन बहल जायेगा।

[रानी कवि शेखर का नाम सुनकर चौंक उठती है]

रानी— कौन आया है, कवि शेखर ? (स्वतः) तो उसने मेरे निमन्त्रण की रक्षा की। (प्रगट) और उनके साथ युवराज वापिस नहीं आया ?

राजा— नहीं, नदी में बाढ़ आजाने के कारण वह नगर के द्वार पर रुका हुआ है। शायद शाम तक आ जाये।

रानी— आज बाल्यकाल का उसका कौतूहल याद आरहा है। वह मुझ से पूछा करता था, "मां ! और राजकुमारों के मामा के यहां से इतने उपहार आते हैं, मेरे मामा के यहां से क्यों नहीं आते ?" मैं कहा करती "तुम्हारे मामा का घर, कपिलवस्तु, यहां से बहुत दूर है, इसलिये।" सोलह वर्षों से वह कपिलवस्तु जाने की ज़िद कर रहा था और मैं टालती आ रही थी, किन्तु इस बार मैं उसे बाधा न दे सकी। इस बार कपिलवस्तु जाकर ही उसने पीछा छोड़ा।

राजा— इतने दिनों से तुम व्यर्थ बाधा दे रही थी। पहली बार उसके मातामह ने उसे अपने यहां देखकर, न जाने, कितनी खुशियां मनाई होंगी।

रानी— इन्हीं बातों को उसके मुख से सुनने के लिये मैं आकुल हो उठी हूँ। उससे मिले बिना मैं कहीं नहीं जाऊंगी।

राजा— जैसी तुम्हारी इच्छा, मैं तो चला।

[राजा का प्रस्थान। रानी कुछ सोचती हुई जाना ही चाहती है कि भेरी-वाद्य होता है। वह रुक जाती है।]

रानी— चित्रलेखा !

चित्रलेखा—(प्रवेश करके) आज्ञा, महारानी !

रानी— अकस्मात् यह भेरी-वाद्य कैसा ?

चित्रलेखा—कह नहीं सकती, महारानी !

रानी— पता लगाओ।

चित्रलेखा—जो आज्ञा। (प्रस्थान)

रानी— (कुछ सोचती हुई) शायद युवराज आया है।.....निश्चय ही युवराज आया होगा.....

[कवि शेखर तेजी से प्रवेश करता है]

कवि— युवराज अभी तक नहीं आया है, रानी !

[उसे देखकर रानी सिहर उठती है. किन्तु साथ ही प्रकृतिस्थ होने की भरपूर चेष्टा करती है।]

रानी— ओ ! कविशेखर ! तो फिर क्या यह तुम्हारा अभिनन्दन है ?

कवि— मुझ दरिद्र का अभिनन्दन तो तुम्हारी कृपा-दृष्टि है, रानी।

रानी— फिर यह भेरी-वाद्य कैसा ?

कवि— युद्ध की आशंका।

रानी— युद्ध ?

कवि— हां. खंडयुद्ध। राजप्रासाद को उत्सव में मग्न जान, प्रजा विद्रोह कर उठी है। महाराज उसके दमन के लिये गए हैं और मुझे इस सन्देश के साथ उन्होंने तुम्हारे पास भेजा है।

रानी— और युवराज ?

कवि— उसकी चिन्ता न करो, रानी ! वह निरापद है। उसकी रक्षा के लिये महाराज ने नगर-द्वार पर सेना भेजदी है।

रानी— नगर में विद्रोह है और मैं युवराज की चिन्ता न करूं ? यहां क्या तुम केवल व्यंग करने ही आये हो, कवि !

कवि—क्यों रानी ?

रानी— मैं कभी कभी २ आश्चर्य्य से तुम्हारा साहस देखा करती हूँ। जी में आता है दंड दूं, किन्तु मंत्र-मुग्ध सी चुप हो जाती हूँ। खैर··· (कुछ सोचकर) इधर सुनो। (कवि पास आ जाता है) युवराज को उस बात का पता तो नहीं चला ?

कवि— कैसे पता चलता ? उस रास्ते के सारे द्वार तो तुम अपने हाथों रुद्ध कर आई हो।

रानी— फिर भी·····

कवि— बिलकुल नहीं।

रानी— अच्छा सुनो, तुम्हारी काली चिड़िया अच्छी है न ?

कवि— काली चिड़िया ?

रानी— हां हां, तुम्हारी स्त्री कोकिला।

कवि— उसका नाम तो कोकिला नहीं है।

रानी— फिर क्या है, काग ?

कवि— उसका नाम है काकली।

रानी— काकली ही सही। कैसी हैं उसकी आंखें ?

कवि— उसकी आंखें जाती रहीं, वह अब बिलकुल अन्धी है।

रानी— अब भी तुम उससे प्रेम करते हो ?

कवि— तुम क्या समझती हो ?

रानी— कर भी सकते हो और नहीं भी ·····

कवि— नहीं, मैं उससे अब अधिक प्रेम करता हूं।

रानी— ओ ! और तुम्हारी पुत्री कैसी है ?

कवि— वह भी अच्छी है।

रानी— एक बात और पूछूंगी। बुरा तो नहीं मानोगे ?

कवि— पूछो।

रानी— कैसा रूप पाया है तुम्हारी पुत्री ने ?

कवि— यह कैसा प्रश्न, रानी ! आखिर उस निरपराध बालिका पर तुम्हारा आक्रोश क्यों ?

रानी— नहीं, मैं यों ही जानना चाहती थी कि किसका रूप पाया है तुम्हारी कन्या ने ?

कवि— कुरूपा होते हुए भी हमारी टूटी झोंपड़ी का प्रदीप है वह।

रानी— तुम नहीं समझे। मैं पूछना चाहती थी कि किसका रूप पाया है तुम्हारी कन्या ने ? तुम्हारा या····· अपनी मां काकली का, या···· मेरा ?

कवि— उसने अपनी मां का ही रूप पाया है।

रानी— (विचलित होकर एक सांस में) शेखर, शेखर, मेरा क्या उसमें बिलकुल अंश नहीं, जरा भी नहीं, किंचित मात्र भी नहीं ?

कवि— तुम्हारा रूप अपूर्व है रानी ! वह ऐसी रूपसी नहीं।

रानी— और तुम्हारी दोनों आंखें उसने नहीं पाईं ?

कवि— नहीं, अपनी मां की तरह वह भी अन्धी है।

रानी— (अट्टहास करके) वह भी अन्धी है····· वह भी अन्धी है ? (प्रकृतिस्थ होकर) कवि, इसी का नाम है प्रकृति का प्रतिशोध।

कवि— प्रकृति का प्रतिशोध ?

रानी— हां ! तुम्हारी दोनों आंखें मुझे बहुत अच्छी लगतीं। मैं दिन रात उन्हें ललचाई निगाहो से देखा करती, किन्तु तुमने एक बार उचटती आंखों से भी मेरी ओर नहीं देखा। मैं देखती हूं आज काकली और उसकी कन्या ने उसका प्रतिशोध ले लिया है।

कवि— इस पुरानी कहानी में अब क्या रक्खा है, रानी !

रानी— याद है, राजसभा में तुम्हारा गाना होता ? मैं कभी गाती, कभी वीणा बजाती। मेरे नृत्य के एक २ ताल के साथ अग्नि-शिखा की तरह तुम्हारा स्वर ऊपर उठता, तुम्हारे मुख पर बिजली चमकने लगती।

कवि— याद है। तुमने ही मेरे प्राणों में संगीत भर दिया था।

रानी— (दीर्घश्वास) और भी बहुत कुछ देना चाहा था, शेखर ! बहुत बहुत कुछ; किन्तु तुमने मेरे प्रसारित हाथों को झिड़क दिया। तुम्हारी वह बालिका-वधू, ग्राम्यबाला, काली काकली·····

कवि— (खिन्न होकर) क्षमा करो, रानी ! मैं जा रहा हूं। (प्रस्थानोद्यत)

रानी— (डांट कर) ठहरो, अभी नहीं जा सकते। एक रानी के पास से उसकी आज्ञा के बिना कोई नहीं जा सकता।

कवि— (घबराकर) यह क्या ? (सम्हलता हुआ लौट आता है) ओ ! तुम रानी हो !

रानी— हां, रानी हूं। (कुछ देर के बाद सामने आकर नम्र स्वर में) किन्तु रानी बनने की कामना तो मैंने नहीं की थी, शेखर ! मैंने तो चाहा था तुम्हारी टूटी फूटी झोंपड़ी के एक कोने में आश्रय पाना। तुमने कहा, "काकली क्या कहेगी ?" मैं बोली "जिस आकाश की छाती के नीचे काकली वास करती है, वहां क्या चन्द्र सूर्य्य नहीं आते जाते ?" नहीं आते जाते हैं, बोलो ?

कवि— आते जाते हैं, किन्तु वह थी अशिक्षिता, वह थी ग्राम्यबाला, वह थी कुरूपा और नेत्रहीना। मैंने उसके इन अपूर्व ऐश्वर्य को कभी उसे अपना ही नहीं समझने दिया, वह परिपूर्णभाव से मुझ पर निर्भर करती आरही थी। इसी बीच में राजभवन के निकली हुई एक राजकन्या आकर उसके पास खड़ी होती। वह समझती उसका जीवन व्यर्थ है, मैंने उसकी रिक्तता एक राजकुमारी से पूरी करली।

रानी— इसी लिए मैंने भी उसका प्रतिकार किया। कोशल का राज-मुकुट जिस समय मुझे पहिराया जाने लगा, मैंने कोई आपत्ति नहीं की, पटरानी बनकर यहां चली आई। आज मैं रानी हूं।

कवि— हां, रानी हो। सर्व-सुख-सम्पन्ना रानी हो।

रानी— क्या कहा सर्व-सुख-सम्पन्ना ? यदि ये शब्द और किसी के मुख से निकले होते तो अपने हाथों मैं उसका कलेजा चीर डालती, किन्तु कवि ! मैंने तुम्हें सदा क्षमा किया है। (कुछ देर सोचने के बाद) अच्छा, तुम मेरा यह नया रूप देखकर मन ही मन क्या सोचते होगे, शेखर !

कवि— वसन्त की रानी, वासन्ती।

रानी— (ज़ोर से हंस पड़ती है) रंग से लाल होगई हूं, इसीलिए ? अरे

पागल ! यह रंग नहीं है, यह है रक्त। एक-एक बून्द करके मेरा हृदय चीर कर निकला हुआ ताजा रक्त, मेरे एक-एक दिन और एक-एक क्षण का क्षरण। शेखर ! मेरे मन में यहां बहुत अशान्ति है। मैं रातों नहीं सोती, सारा दिन सोचते-सोचते कट जाता है। मैं तिल-तिल करके जल रही हूं। अपना जन्म-दोष कब तक मैं इस राजा की आंखों से प्रतारणा की आड़ में छिपाती रहूँगी ? शेखर ! मेरी रक्षा करो, मुझे यहां से कहीं ले चलो। बताओ तो, मैं कब तक अपनी आत्मा के साथ युद्ध करती रहूँगी ?

कवि— बहुत दिन पहले पढ़ी हुई कहानी की तरह मुझे भूल जाओ, रानी ! जीवन के नये पृष्ठ पर नई कहानी लिखो, नया संसार बसाओ। शान्ति पाओगी, मुक्ति मिलेगी।

रानी— असम्भव ! तुम मेरे लहू की एक-एक बून्द में तांडव कर रहे हो। कैसे भूल जाऊं, बोलो ? सत्य की रक्षा करो, शेखर ! सत्य के इस नग्न चित्र पर मिथ्या का आवरण कब तक चढ़ा रहेगा ? (कवि मुख फेर लेता हैं) कवि ! मेरे प्रसारित हाथों पर दया करो।

कवि— रानी ! मुझे क्षमा करो। मेरी काली और अन्धी काकली पर तरस खाओ।

रानी— तुम नहीं जानते, तुमने नहीं देखा है, इसीलिए। अच्छा ठहरो, मैं अभी आती हूं। (अन्दर जाकर अपने छोटे कुमार को गोद में ले आती है) पहिचानो यह कौन है ?

कवि— तुम्हारा कुमार।

रानी— नहीं, तुम।

कवि— (विचलित हो चीत्कार करके) रानी !

रानी— इधर आओ, और पास आओ, प्रकाश में आकर अच्छी तरह देखो। (तथाकरण) बोलो, यह किसका मुख है ? बोलो, यह किसका रंग है, किसकी आंखें हैं ? राजा की ?.....मेरी ?..... नहीं, तुम्हारी। तुम्हारी आंख में एक तिल है, देखो इसकी आंख में भी है। तुम्हारे कान के पास एक मस्सा है, देखो उसके भी

है। देखी सत्य की नग्न-मूर्ति ? राजा का रक्त मेरी कोख में था, किन्तु तुम थे मेरे मन में। नाम जानते हो, क्या रक्खा है ? शेखर, राजशेखर। तुम कवि शेखर, यह राज शेखर।

कवि— (दोनों आंखें बन्द करते हुए) ओफ ! साक्षात नर्क।

रानी— (हाथ पकड़ कर) हां, साक्षात नर्क। बोलो, ले चलोगे मुझे इस नर्क के उस पार ?

कवि— (हाथ छुड़ाकर) इस बालक की ओर मैं एक क्षण नहीं देख सकता। रानी ! मैं जारहा हूं, मुझे कोई नही रोक सकता।

[वह वेग से चला जाता है, रानी कुछ दूर तक उसके पीछे दौड़ जाती है।]

रानी— शेखर ! शेखर ! सुनो, एक बात सुनते जाओ।

[शेखर नहीं आया। कुछ देर तक रानी उस पथ की ओर देखकर दूसरी ओर मुड़ जाती है।]

कवि— चित्रलेखा ! मल्लिका ! सौदामिनी !

[रानी के इस चीत्कार से सारी दासियां दौड़ आती हैं। रानी कुमार को उनमें से एक की गोद में दे देती हैं और संकेत पाकर वे चली जाती हैं। उनके जाने के बाद वह दांत पीसकर पदचारणा करते-करते एकाएक रुक जाती है, मानो वह किसी संकल्प पर पहुंच गई है।]

रानी— चित्रलेखा ! (चित्रलेखा का प्रवेश) मेरा मूक क्रीतदास ! (उसका प्रस्थान) अच्छी बात है, अब तक तुमने स्त्री के प्यार को देखा था अब उसकी घृणा और प्रतिशोध भी देखते जाओ। (फिर कुछ पदचारणा करने के बाद) आह ! यदि उसकी वे दोनों आंखें न होतीं तो आज मेरा जीवन इस प्रकार नष्ट न होता। ओफ ! उसकी दोनो आंखें !! (बाहर भेरी-वाद्य होता है) यह क्या, युद्ध वाद्य ? प्रतिहिंसा का रुद्र आवाहन ! (ज़ोर से चीत्कार करके) क्रीतदास क्रीतदास !! (एक विकट दर्शन गुलाम आकर प्रणाम करता है और रानी के चरणों पर लोटने लगता है। उसे देखकर रानी किसी अज्ञात भय से कांप उठती है और वहां से हटकर दूसरी तरफ

खड़ी हो जाती है) नहीं, नहीं, कोई आवश्यकता नहीं, कोई आवश्यकता नहीं, मेरी आंखों से दूर चले जाओ। (क्रीतदास किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा हटकर दूर खड़ा होजाता है। रानी कुछ सोचने लगती है) कितने दिनों तक उसकी राह देखती रहूंगी? कब तक उसके लिये ठोकरें खाती रहूँगी? (फिर कुछ सोचकर) अच्छा, तो यही हो। विश्व का यह अपूर्व सौन्दर्य्य सदा के लिए क्षय हो। क्रीतदास इधर आओ। (तथाकरण) ना ना, हृदय क्यों कांप रहा है? मन में एकाएक हलचल सी क्यों उठ रही है? चित्रलेखा! (चित्रलेखा का प्रवेश) जलतरंग बजाओ भैरव राग में। आज उसकी तरंग और ताल पर तांडव करूंगी, जीवन के साथ प्रलय-खेल खेलूंगी। (चत्रलेखा का प्रस्थान। जलतरंग पर भैरव छिड़ जाता है। रानी खड़ी होकर मानो साहस बटोरने लगती है) क्रीतदास इधर आओ। (वह वैसा ही करता है। रानी उसे कुंज-वीथि के किनारे लेजाकर एक छुरा अर्पण करती है) लो यह छुरा। उसकी दोनों आंखें निकाल लाओ, वही जो अभी यहां खड़ा मुझ से बातें कर रहा था। समझे? (क्रीतदास ने सिर हिलाकर संकेत किया कि वह सब समझ गया) और सुनो, नाम जानते हो? .....शेखर। जाओ, अपना काम करो।

[क्रीतदास का दौड़कर प्रस्थान। रानी जैसे ही जाना चाहती है एक सैनिक पिछले द्वार से आ जाता है।]

सैनिक— महारानी।

रानी— (लौटकर) कौन?

सैनिक— महाराज ने खबर भेजी है कि विद्रोह-दमन अभी तक नहीं हो सका है। आज वे शायद वापिस नहीं आ सकेंगे।

रानी— अच्छी बात है, जाओ। (सैनिक का प्रस्थान) तो आज वसन्तोत्सव नहीं प्रलय-रात्रि है। आज अबीर-कुंकुम की वर्षा नहीं, रक्त की वर्षा होगी; आज प्रलय-रात्रि है.....

[वह अट्टहास कर उठती है। सामने से कवि शेखर आ जाता है। उसे देखकर भय से सिहर कर वह दोनों हाथों से अपनी आंखें बन्द कर लेती है।]

कवि— तुम्हें मेरी दोनों आंखों की जरूरत है, रानी ! (रानी चीत्कार कर उठती है) इतनी-सी बात तो तुम मुझे भी कह सकती थी।

रानी— क्या तुम्हें सब मालूम होगया शेखर !

कवि— तुम्हारे पास से मैं जा रहा था कि विद्रोहियों के एक दल को महल की ओर मैंने आते देखा। मैं दौड़कर तुम्हें सावधान करने आरहा था कि मैंने सुना उस कुंज-वीथि के पीछे तुम अपने क्रीतदास को छुरा अर्पण कर कुछ कह रही हो। मैं आश्चर्यित हो खड़ा हो गया। थोड़ी देर में मैंने देखा कि वह मेरे पास से दौड़ा निकल गया और उसने मेरी आंखें नहीं निकाली। मैं समझ गया कि उसने मुझे पहिचाना नहीं।

रानी— (खुश होकर) शेखर ! तो क्या उसने तुम्हें सचमुच नहीं पहचाना ?

कवि— नहीं।

रानी— बुलाओ उसे। मैं उसे सोना दूंगी, हीरे दूंगी, बहुत पुरस्कार दूंगी। (उसकी ओर दो पग बढ़ जाती है)

कवि— उसने मुझे पहिचानने में भूल की। मैंने उसका पीछा किया और जानती हो क्या देखा ?

रानी— क्या ?

कवि— मैंने देखा वह नंगा छुरा लिए तेजी से तुम्हारे कुमार के शयन-कक्ष की तरफ बढ़ा जारहा है ! तुमने अपने कुमार का नाम भी तो शेखर ही रक्खा है न ?

रानी— (विचलित होकर) तो क्या···मेरा कुमार ·· आज ···इस महारात्रि को ·····

कवि— जीवित है। मैंने तुम्हारे क्रीतदास की हत्या करके कुमार की रक्षा की है और अब अपनी आंखें तुम्हें दे जाने की व्यवस्था करने जारहा हूँ।

[कवि का तेजी से प्रस्थान। रानी कवि को पुकारती हुई जैसे उसके पीछे दौड़ना चाहती है कि भेरी-वाद्य होता है और साथ ही कोलाहल। एक सैनिक प्रवेश करता है।]

सैनिक— महारानी ! महाराज पधार रहे हैं।

[सैनिक का प्रस्थान और राजा का प्रवेश]

राजा— रानी ! सुन रही हो बाहर कोलाहल ? विद्रोह मैं दमन कर आया हूं, किन्तु इन्हें शान्त तुम करो

रानी— मैं ?

राजा— हां, तुम। तुम्हारे विरुद्ध इनकी एक फरियाद है। ये कहते हैं कि नगर में आज लहू की नदी बह गई है और इसका कारण है तुम्हारे द्वारा की गई धर्म्म की अमर्य्यादा। भगवान् की जाति-कन्या होकर भी तुमने चरण-धूलि के स्पर्श से मुंह मोड़ा। भगवान् के वंश में तुम्हारा जन्म, सदाचार में तुम्हारी दीक्षा, धर्म्म-क्रिया में तुम्हारा श्रेष्ठ अधिकार, फिर भी तुमने धर्म्म की अश्रद्धा की है।

रानी— फिर मुझे क्या करना होगा ?

राजा— प्रायश्चित्त के रूप में कुछ नहीं। केवल अपने पुण्य-करों से प्रजागण को भगवान की चरणधूलि बांट दो।

रानी— उसके पहले एक मेरी भी फरियाद है, महाराज ! मैं आपसे उसका फैसला मांगती हूँ।

राजा— मुझे आपत्ति नहीं है। कहो, क्या है तुम्हारी फरियाद ? किसके विरुद्ध तुम कहना चाहती हो ?

रानी— आपकी एक प्रेयसी के विरुद्ध।

राजा— मेरी प्रेयसी ?

रानी— हां ! इस राजपुरी में आपकी एक प्रेयसी और आश्रिता भगवान् के नाम को बहुत बड़े व्यभिचार से कलंकित कर रही है। वह एक दासी की कन्या हैं, किन्तु उच्चकुलजाता बनकर महल में घुस आई है। अब वह बहुत बड़ा धर्म्मानुष्ठान करने जारही है। धर्म्म के विरुद्ध इतना बड़ा अन्याय मैं कभी नहीं होने दूंगी। उसके खिलाफ मैं अपनी आवाज आपके कानों तक पहुंचाती हूँ।

राजा— कौन है वह आश्रिता ?

रानी— पहले फैसला कीजिये, महाराज !

राजा— मैंने फैसला किया—प्राणदंड अथवा निर्वासन।

रानी— दंड-विधान की जै हो। ज़रा मैं उस दुष्टा को दंड देती आऊं। (प्रस्थानोद्यत)

राजा— पहले चरणधूलि तो बांटती जाओ, रानी।

रानी— ना पहले राज-भवन पवित्र हो ले, शुद्ध हो ले, सत्य हो ले। (उन्मत्त सी प्रस्थान)

राजा— (बाहर की तरफ झांक कर) प्रजागण ! कुछ दिन और प्रतीक्षा करो, चरणधूलि पाओगे।

प्रजागण—नहीं, हमें चरणधूलि अभी मिलनी चाहिये।

राजा— नहीं, पहले राज-भवन पवित्र हो ले।

प्रजागण—राजभवन पवित्र हो ले ?

राजा— हां, पवित्र हो ले, शुद्ध हो ले, सत्य हो ले।

[प्रजागण का प्रस्थान]

सैनिक— (आकर) महाराज ! युवराज राजधानी पधार चुके हैं !

राजा— अच्छी बात है। तुम बाहर रानी की प्रतीक्षा करो। उनसे कहना कि मैं युवराज का स्वागत करके अभी लौटूंगा।

[एक ओर राजा का प्रस्थान और दूसरी ओर से रानी, चित्रलेखा का प्रवेश]

रानी— कुछ उसका पता चला, चित्रलेखा ?

चित्रलेखा—किसका ?

रानी— कवि शेखर का।

चित्रलेखा—वे स्वदेश लौट गये।

रानी— स्वदेश ?

चित्रलेखा—हां, वे सदा के लिये विदा ले कपिलवस्तु चले गए।

रानी— घृणा से, क्यों ?

चित्रलेखा—ऐसा न कहिये, महारानी ! आप को पाप लगेगा। वे मनुष्य नहीं देवता हैं। जाती वार मुझे उनके दर्शन हुए थे। आपकी सेवा में निवेदन करने के लिए वे अपना अन्तिम अर्घ्य मुझे दे गये हैं।

रानी— अन्तिम अर्घ्य ?

चित्रलेखा—मैंने उसे यत्न से रख छोड़ा है।

रानी— देखूं तो चित्रलेखा, कहां है वह अर्घ्य ?

[चित्रलेखा अन्दर जाकर फौरन ही कपड़े से ढकी एक थाली ले आती है]

रानी— इसके ऊपर का कपड़ा तो उठा, चित्रलेखा !

चित्रलेखा—जो आज्ञा।

[चित्रलेखा कपड़ा उठाती है। उसे देखते ही रानी दोनों हाथों से आंखें बन्द कर चीत्कार कर उठती है]

रानी— ये क्या पद्मफूल ? कवि शेखर की दोनो आंखें !

चित्रलेखा—जाती बार उन्होंने मुझ से कहा था "तुम्हारी रानी को मेरी आंखों की ज़रूरत है। लो, उन्हें मेरी ओर से इन्हें दे देना और कह देना कि अब हमारा सारा परिवार अन्धा होगया। हम अब पहले से भी अधिक सुखी होगए।" इतना कह लाठी टेकते हुए वे कपिलवस्तु की ओर चले गए।

रानी— (धीरे-धीरे आंखें खोलती हुई) यही है उसका अन्तिम अर्घ्य ?

चित्रलेखा—हां, महारानी !

रानी—पद्मफूल,··· उसकी दोनों आंखें····(चित्रलेखा कुछ नहीं बोली) इन आंखों को जबरदस्ती मैंने छीन लेना चाहा था, किन्तु नहीं छीन सकी। आजीवन प्राणपण चेष्टा करके भी जिसे न पा सकी, आज उसे वह स्वेच्छा से दान कर गया है। क्यों कर गया, चित्रलेखा ?

चित्रलेखा—नहीं जानती महारानी !

रानी— नहीं जानती ? (दीर्घश्वास) न जानना ही अच्छा है। जीवन की यह चिरन्तन पहेली कोई न सुलझा सके, यही उत्तम है। (थाली की ओर देखकर) इन आंखों को पीछे देखूंगी, पहले····

मल्लिका— (आकर) महारानी, कुमार रो रहा है।

रानी— नहीं, पहले राज भवन पवित्र हो ले, शुद्ध हो ले, सत्य हो ले। चित्रलेखा ! मेरे साथ आ। मुझे यहां से बहुत दूर जाना है।

चित्रलेखा—कहां जाना है महारानी ?

रानी— बुद्धं शरणं गच्छामि
धर्म्मं शरणं गच्छामि
संघं शरणं गच्छामि।

[उन्मत्त-सी रानी के पीछे-पीछे चित्रलेखा और मल्लिका का प्रस्थान। दूसरी ओर से राजा और युवराज का प्रवेश।]

राजा— तुम्हें आने में बहुत देर हुई, युवराज !

युवराज—एक खास काम से देर हो गई, पिता जी ! मातामह के यहां से जब मैं वापिस आ रहा था, तो रास्ते में मुझे याद आया कि मैं अपनी तलवार अपने कमरे में भूल आया हूं। उसे लेने के लिए जब मैं वापिस गया तो देखा कि एक दासी उस कमरे को गंगाजल से धो रही है। पूछने पर उसने मुझे बिना पहिचाने ही बताया कि उस कमरे में एक दासी-पुत्र ठहरा हुआ था, इसी कारण वह उस कमरे को धोकर पवित्र कर रही है।

राजा— (साश्चर्य्य) दासी-पुत्र ?

युवराज—केवल वह दासी ही नहीं, वरन् बाहर आने से मालूम हुआ कि कपिलवस्तु के सारे शाक्य जानते हैं कि आप अपनी तलवार की शक्ति से शाक्य राजकन्या से विवाह करना चाहते थे, किन्तु आखिर आपको व्याहा गया महल की एक दासी की कन्या से ही।

राजा— इतनी बड़ी प्रवंचना ?

युवराज—उसी समय मैंने अपनी तलवार छूकर शपथ खा ली है कि उस गंगाजल का प्रतिशोध शाक्य-जाति के रक्त से लूंगा। इन शाक्य मुनियों के रक्त से देश की भूमि को मैं लाल कर दूंगा पिता जी !

राजा— और देखो इस रानी की हिम्मत को। एक दिन नहीं, दो दिन नहीं, आज सोलह वर्षों से यह हमारी आंखों में धूल झोंकती आरही है। एक पुरनारी के विरुद्ध उसने आज ठीक ऐसा ही अभियोग लगाया था। युवराज ! मैं तुम्हारी माता को दंड दूंगा।

युवराज—शेष सारी शाक्य-जाति का भार मैंने अपने सिर लिया। यहां पहुंचते ही मैंने अपने सैनिकों को आदेश दे दिया है कि यहां के आश्रम में आग लगा दी जाये और सारे शाक्य मुनियों की हत्या करके उनके छिन्न मस्तक मेरे सामने लाये जायें।

राजा— युवराज, पहले रानी का फैसला करो। परिचारिका!

मल्लिका— (प्रवेश करके) आज्ञा महाराज!

राजा— रानी उपस्थित की जायें।

मल्लिका— वे यहां नहीं हैं।

राजा— कहां गईं हैं?

मल्लिका— वे स्वयं निर्वासन-दंड ग्रहण कर और राजपुरी त्याग कर श्रीबुद्ध के आश्रम में सदा के लिए प्रस्थान कर चुकी हैं।

राजा— किसकी आज्ञासे उन्होंने महल के बाहर पैर निकाला?

मल्लिका— आपकी आज्ञा से।

राजा— मेरी आज्ञा से?

मल्लिका— उन्होंने एक पुरनारी के विरुद्ध आपसे कुछ कहा था न? आपने अपना फैसला भी तो सुना दिया था, महाराज!

राजा— अच्छा, तो अपराधिनी स्वयं रानी थीं। आज मैं समझा कि गत सोलह वर्षों से वह क्यों तिल-तिल कर जल रही थी। वह सदा कुछ कहना चाहते हुए भी, किसी आशंका और भय से, कुछ न कह पाई। असल में शाक्य राजा के पापों का प्रायश्चित्त रानी जल जलकर स्वयं यहां कर रही थीं।

युवराज—पिता जी! मैं आश्रम जारहा हूं अपनी उस कल्याणमयी माता को मना लाने। मैं उन्हें वापिस लाऊंगा और फिर उन्हें राज-लक्ष्मी के आसन पर बिठाऊंगा।

द्वारपाल—(प्रवेश करके) महाराज की जय हो। युवराज का सैनिक शाक्य-आश्रम से किसी का छिन्न मस्तक लिए बाहर खड़ा है और आने की आज्ञा चाहता है।

युवराज—आने दो (द्वारपाल का प्रस्थान) देखा पिता जी, आपने मेरा प्रतिशोध ? एक-एक करके मैं इन शाक्य मुनियों की हत्या कराऊंगा और····(सैनिक का एक ढकी थाली लिए हुए प्रवेश) इधर आओ सैनिक ! इस थाली के ऊपर का कपड़ा उठाओ।

[सैनिक आज्ञा-पालन करता है। उसमें रक्खे हुए छिन्न मस्तक को देखकर सब एक स्वर में चिल्ला उठते हैं।]

युवराज—यह क्या, मां का मस्तक ?

राजा— क्या कहा, महिषी की हत्या ?

सैनिक— हां, महाराज ! आश्रम की पहली भेंट।

क़ानून

जनवरी, १९४३

कानून

(पहला दृश्य)

स्थान—सेठ विलासराय का दफ्तर।

[कमरा पुराने व्यवसाइयों के ढंग पर सजा हुआ है। दीवार पर एक दूसरे के बहुत समीप "रावी ऐंड कम्पनी" की पौराणिक तस्वीरें लगी हुई हैं। एक बड़ा सा फर्श बिछा हुआ है; बीच में मखमल का कालीन है और उस पर दो बड़े तकिये रक्खे हैं। सामने की टाइमपीस में साढ़े दस बज रहे हैं।

इस कमरे में इस समय दर्शनलाल के अतिरिक्त और कोई नहीं। वे इस फर्म के प्रधान मुनीम हैं—उम्र लगभग ६० वर्ष, दुबला पतला इकहरा शरीर, मध्यम कद, आधी मूछें और मुंह में पान। सन्दूकड़ी पर कुछ कागज रक्खे, वे हिसाब जोड़ने में व्यस्त हैं। उनका चश्मा नाक की नोक पर रक्खा हुआ है।]

दर्शन—पांच और बारह, सत्रह; सत्रह और नौ, छब्बीस; छब्बीस और ग्यारह, सैंतीस के पांच आने, हाथ में दो रुपये·····

[मक्खन चपरासी का प्रवेश। दर्शनलाल उसे घूर कर देखते हैं]

दर्शन—क्या बजा है, मक्खन ?

मक्खन—(घड़ी देखकर) दस बजकर पैंतीस मिनट।

दर्शन—और दफ्तर आने का क्या समय है ?

मक्खन—दस बजे।

दर्शन—फिर दस बजकर पैंतीस मिनट होने का कारण ?

मक्खन—आज ही देर होगई है। आइन्दा ख्याल रक्खूंगा।

दर्शन—हां, भविष्य में ध्यान रहे। सेठ जी के आने के पहले सबको यहां आ जाना चाहिये। (अन्दर कमरे की ओर देखकर) चमनलाल भी अभी तक नहीं आया। नाक में दम कर रक्खा है तुम लोगों ने (मक्खन बाहर चला जाता है! दर्शनलाल फिर हिसाब जोड़ने लगते हैं) हाथ के दो रुपये, दो रुपये, (मक्खन फिर प्रवेश करता है और कुछ कहने की चेष्टा करते हुए भी चुप रह जाता है। दर्शनलाल इस बाधा से क्रुद्ध हो उठते है) क्या है ?

मक्खन—एक साहब अन्दर आना चाहते हैं।

दर्शन—एक साहब ?

मक्खन—जी नहीं, एक औरत।

दर्शन—एक औरत ?

मक्खन—जी हां, बाबू चमनलाल से मिलना चाहती है।

दर्शन—कह दो, वे अभी नहीं आये हैं।

मक्खन—यह मैंने उनसे कह दिया है। (प्रस्थानोद्यत)

दर्शन—और सुनो, यह भी कह दो कि यह दफ्तर है, स्त्रियों से मिलने का स्थान नहीं।

मक्खन—मैंने यह भी कह दिया है। कहती है कि बहुत जरूरी काम है, बिना मिले वापिस नहीं जायेंगी।

दर्शन—(सोचकर) अच्छा, उन्हें यहां भेज दो।

मक्खन—बहुत अच्छा।

[मक्खन चला जाता है। दर्शनलाल फिर हिसाब जोड़ने लगते हैं। कुछ क्षण पश्चात एक क्षुब्ध-सी युवती प्रवेश करती है—बहुत दुबली, पतली और दुःखियारी सी। उसकी उम्र २० साल की होगी। उसके बिखरे बाल और धंसी आंखें स्पष्ट बता रही हैं कि वह पीड़िता है। वह दर्शनलाल के पास आकर खड़ी हो जाती है।]

रमणी—मैं चमनलाल से मिलना चाहती हूँ।

दर्शन—आपका उनसे कोई दफ्तर संबंधी कार्य्य है?

रमणी—जी नहीं।

दर्शन—तो उनके घर जाकर मिलिये।

रमणी—वे घर नहीं हैं।

दर्शन—तो यह सेठ विलासराय का दफ्तर है, रेलवे का वेटिंग-रूम नहीं। यहां आप दफ्तर के कार्य्य से ही मुलाकात कर सकती हैं।

रमणी—दो दिन से उनके यहां रोज़ जारही हूँ, मकान पर ताला लगा मिलता है और मुलाकात नहीं होती। मुझे उनसे बहुत आवश्यक कार्य्य है!

दर्शन—(रमणी की ओर बहुत संदिग्ध भाव से देखता हुआ) उनका आप से क्या संबंध है?

रमणी—वे मेरे भाई हैं।

दर्शन—अपने भाई?

रमणी—अपने पराये, जो हैं, ये ही हैं। इनके अतिरिक्त मेरा संसार में कोई नहीं।

[बाहर से दो बच्चों की दौड़-धूप और शोर सुनाई देता है]

दर्शन—(बाहर की ओर देखता हुआ) किसके बच्चे हैं ये?

रमणी—मेरे।

दर्शन—(चिढ़कर) उनसे मिलने के लिए आप बच्चे भी साथ लेती आई हैं? जाइये, संध्या समय उनसे घर पर मिलियेगा।

रमणी—मुझे बहुत आवश्यक कार्य्य है, महाशय! मुझे अभी उनसे मिलना

होगा। यह मेरे जीवन-मरण का प्रश्न है।

दर्शन—(विस्फारित नेत्रों से देखता हुआ) जीवन-मरण का प्रश्न ?

रमणी—जी हां, जीवन मरण का प्रश्न।

[चमनलाल का प्रवेश—दुबला पतला सा ३० वर्ष का युवक, मैले खादी के कपड़ों में। वह दर्शनलाल के पास जा उन्हें नमस्कार करता है और रमणी को देखकर आश्चर्यित होता है।]

दर्शन—(चमनलाल से) ये तुमसे दो बातें करना चाहती हैं। कहती हैं, बहुत जरूरी काम है, जीवन-मरण का प्रश्न है। (कुर्सी पर से उठता हुआ) तुम इनसे बात करो, मैं अभी बाहर से आया। ध्यान रखना, सेठ जी के आने का समय होगया है।

[दर्शनलाल का प्रस्थान। चमनलाल उस रमणी के पास आ जाता है।]

चमन—यहां कैसे, रजनी ! क्या फिर कोई नई बात हो गई है ?

रजनी—अब तो हद होगई, भैय्या ! रात फिर नशे में बुरी तरह सराबोर लौटे। द्वार खोलने में जरा देर हुई, तो यह देखो ·····(बांह दिखाती है) बेंत और जूतों की मार से कैसी दुर्दशा करदी है ? आते ही बच्चे को उठाकर धम्म से पृथ्वी पर दे मारा।

चमन—क्यों ? क्या अपराध किया था उसने ?

रजनी—उनकी चारपाई पर सोरहा था।

चमन—तुमने उन्हें रोका क्यों नहीं ?

रजनी—मेरा रोकना ही तो जहर बन गया। मेरे बोलने पर छुरा लेकर उसकी हत्या कर रहे थे। बगलवाली मेरा चिल्लाना सुन न दौड़ आती, तो उसकी भी कहानी समाप्त थी। पन्द्रह दिन पहले एक को छत से ढकेल कर मार ही डाला था और रात दूसरे की जान के पीछे पड़े थे। (रो पड़ती है)

[चमनलाल रजनी के आंसू अपनी कमीज की आंचल से पोंछकर उसके सिर पर हाथ फेरने लगता है।]

चमन—तुम रात ही मेरे पास क्यों नहीं चली आई, रजनी !

रजनी—रात कैसे आती ? अब उनके बाहर जाते ही तुम्हारे पास दौड़ी

आई हूँ। (कुछ क्षण के बाद) मैं कब तक उनके नशे की भट्टी में अपने बच्चों को झोंकती रहूं, भैय्या !

चमन—मैं क्या जानता था कि तुम्हें मैं एक कसाई के हाथों सौंप रहा हूं, बहन ! (दीर्घश्वास)

रजनी—मेरा तो ऐसा भी ठिकाना नहीं, कि किसी के यहां जाकर दो दिन रह आऊं। तुम्हारे यहां आती हूं, तो और उत्पात मचाते हैं। आत्महत्या करना चाहती हूं तो बच्चों का भविष्य सोचकर हृदय फटने लगता है। जब मेरे सामने इतना अत्याचार करते हैं, तो मेरे बाद न जाने क्या हाल होगा ?

चमन—कुछ दिनों के लिए जैपुर जाकर मामाजी के यहां क्यों नहीं रह आती ?

रजनी—कैसे जाऊं, बताओ !

चमन—परसों ही तुम्हें रुपये दिये थे, क्या सब समाप्त हो गये ?

रजनी—रुपये तो सारे रक्खे हैं, किन्तु अकेली कैसे चली जाऊं ? तुम ही दो दिन के लिए चलकर क्यों नहीं पहुंचा देते ?

चमन—बहुत यत्न कर रहा हूँ, लेकिन छुट्टी नहीं मिलती। (कुछ सोच कर) खैर, आज बारह बजे की गाड़ी से अवश्य चलेंगे, और सदा के लिए चलेंगे। जब यहां से जाना ही है, तो सेठजी की खुशामद कैसा ? जैपुर चलकर ही कमा खाऊंगा। तुम्हें अब उस अधर्म्मी के यहां जाने की आवश्यकता नहीं। तुम बच्चों को लेकर स्टेशन चलो, मैं आ रहा हूं। (रजनी जाना चाहती है) और सुनो, रुपये पास हैं ?

रजनी—हां !

चमन—अच्छा, तुम आगे बढ़ो, मैं समय पर आ जाऊंगा।

[एक बार फिर आंसू पोंछकर जैसे ही बहन को विदा करना चाहता है, दर्शनलाल आ जाते हैं और घूरते हुए देखकर खड़े हो जाते हैं।]

चमन—(रजनी से) जाओ रजनी ! मैंने जो कहा है, वही करना।

[रजनी का प्रस्थान]

दर्शन—देखो चमनलाल ! एक तो तुम कभी समय पर नहीं आते, उस पर तुम्हारे अपने पराये मिलने आया करते हैं। जीवन-मरण की बात पर दया करके मैंने उसे तुमसे मिलने की अनुमति दे दी थी और उसने आकर रोना धोना आरम्भ कर दिया। यदि सेठ जी आ जाते, तो मैं क्या उत्तर देता ?

चमन—इस बार क्षमा कर दीजिये। भगवान् ने चाहा तो फिर ऐसा कभी नहीं होगा।

दर्शन—"फिर ऐसा कभी नहीं होगा;" मिल वाली रोकड़ का काम समाप्त हुआ ?

चमन—कल ज़रूर हो जाएगा ?

दर्शन—इतने दिनों से तुम क्या कर रहे थे ? सुमतप्रसाद को गये कितने दिन हुए ?

चमन—पांच दिन।

दर्शन—पांच दिनों में तुम इतना ज़रा सा काम नहीं कर सके ? ना बाबा, ऐसे काम नही चलेगा। अन्त में सारी ज़िम्मेदारी मेरे सिर आएगी। अच्छी तरह काम करना है तो ठीक है, वर्ना और कहीं काम देख लो। (चमनलाल अपराधी की भांति चुप खड़ा रहता है) यहां खड़े मेरे मुख की ओर क्या देख रहे हो ? जाओ, अपने कमरे में। आज काम खत्म किये बिना तुम घर न जा सकोगे।

चमन—(घबरा कर) किन्तु आज तो बारह बजे मुझे बहुत ही ज़रूरी काम है. मुनीम जी ! ऐसा ही है, तो कल रोक लीजियेगा।

दर्शन—(आज्ञापूर्ण स्वर में) दफ्तर का काम तुम्हारे घर के कार्य्य से अधिक ज़रूरी है। जाओ, अपने कमरे में।

[निराश चमनलाल का प्रस्थान। दर्शनलाल फिर हिसाब जोड़ने में व्यस्त हो जाते हैं। कुछ देर के बाद सेठ विलासराय अपने पुत्र गोपीचंद के साथ प्रवेश करते हैं।

विलासराय अधेड़ उम्र के व्यक्ति हैं। उन्होंने पुराने व्यवसाइयों जैसी

पोशाक पहिन रक्खी है. अर्थात्—धोती, अचकन और पगड़ी। कमरे में आते ही वे पगड़ी उतार कर रख देते हैं, जिससे पता चलता है कि उनके कच्चे, पक्के, सफ़ेद और काले बाल सिर से काफी उड़ चुके हैं। सामने के सारे दांत टूटे हुए हैं। उनका पुत्र गोपीचन्द पढ़ा लिखा प्रतिभाशाली युवक मालूम पड़ता है। वह सूट पहने हुए है।

दर्शनलाल उठकर उनका अभिवादन करते हैं और फिर तीनों अपने अपने स्थान पर बैठ जाते हैं। सेठ जी काग़ज़ उठाकर जांच पड़ताल करने लगते हैं, मुनीम जी हिसाब जोड़ने लगते हैं और गोपीचन्द पास रक्खा हुआ अखबार पढ़ने लगता है।]

सेठ—(दर्शनलाल से) मुनीम जी! बैंक के लेजर और अपनी रोकड़ में कितना फर्क है?

दर्शन—लगभग ३००) रु० का।

सेठ—लगभग क्या, ठीक बताइये, कितना फ़र्क है?

दर्शन—(काग़ज़ देखकर) २६७) रु० का।

सेठ—आश्चर्य्य!

दर्शन—कल से इसी में लगा हूं, कहीं ग़लती नहीं निकलती। देखिये, बैंक के लेजर की नक़ल। (कुछ काग़ज़ सामने रख देते हैं)

सेठ—ज़रा फ़र्म वाली चेकबुक तो देखूं। (दर्शनलाल सन्दूकड़ी में से चेकबुक निकाल कर सामने रख देते हैं। सेठजी मुसन्नों को पलटने लगते हैं) ५००) रु० वकील को, ठीक है। १०००) रु० सरनीमल जैकुमार के नाम, क्यों मुनीमजी!

दर्शन—(देखकर) जी हां, ठीक है।

सेठ—३००) रु० का चेक ·····किसके नाम है? देखो तो, गोपीचन्द! यह तो तुम्हारा ही हस्ताक्षर है।

गोपीचंद—(देखकर) जी हां! मेरा ही है। (फिर अखबार पढ़ने लगता है)

सेठ—किस काम से रुपये मंगाये थे?

गोपीचन्द—(अखबार पढ़ने में बाधा पा खिजा हुआ-सा) किस तारीख़ का चेक है?

सेठ—२० तारीख़ का। (गोपीचन्द सोचने का प्रयत्न करता है) केवल पांच दिन पहले की बात है और तुम्हें याद नहीं ?

गोपीचन्द—जी हां, याद है। पान वाले को रुपये दिये गये थे।

सेठ—तुम पान नहीं खाते, मैं नहीं खाता, कभी-कभी आने जाने वालों के लिये मंगवा दिये जाते हैं, उस पर एक माह में ३००) रु० ?

गोपीचन्द—(अख़बार रखकर साश्चर्य्य) ३००) रु० ? असम्भव ! देखूं तो जरा चेकबुक। (चेकबुक देखकर) मुझे खूब याद है मैंने ३) रु० बैंक से मंगवा कर पान वाले को दिये थे।

सेठ—इतनी छोटी रकम के लिये भला चेक देने की क्या आवश्यकता थी ? तुम अपने पास से दे सकते थे।

गोपीचन्द—आपकी ही आज्ञा है कि फर्म संबंधी सारे रुपये चेक द्वारा दिये जायें, ताकि हिसाब साफ रहे।

सेठ—(फिर चेकबुक देखकर) किन्तु यहां तो ३००) रु० लिखे हुए हैं। किसने चेक भुनाया था ?

गोपीचन्द—मैंने तो मुनीम जी को दे दिया था।

सेठ—(दर्शनलाल से) क्यों मुनीम जी ?

दर्शन—उसी समय सेठ प्रकाशनारायण आ गये थे और मैं उनसे बात करने लगा था। मैंने वह चेक सुमतप्रसाद को दे दिया था और उसने ही रुपये इन्हें लाकर दिये थे। आपको स्मरण होगा, गोपीचन्द जी !

गोपीचन्द—जी हां, खूब स्मरण है। सुमतप्रसाद ही ने मुझे रुपये लाकर दिये थे।

सेठ—और सुमतप्रसाद शनिवार को नौकरी छोड़कर चला गया। इसके अर्थ हुए वही रुपये लेकर चम्पत होगया।

दर्शन—बड़े आश्चर्य्य की बात है। तीस वर्ष से यहां काम कर रहा हूँ, कभी ऐसा नहीं हुआ।

सेठ—आश्चर्य्य की बात तो है ही। अंक के स्थान पर तीन के पीछे दो शून्य बढ़ा दिये गये हैं और अक्षर की जगह सौ और लिख दिया

गया है। इससे बड़ा ग़बन और क्या हो सकता है? गोपीचन्द! ज़रा कोतवाली फोन करना। (गोपीचन्द उठ खड़ा होता है) और सुनो, बगल से ज़रा बैंक बाबू को दो मिनट के लिये मेरे पास भेज देना।

गोपीचन्द—बहुत अच्छा। (प्रस्थान)

सेठ—आज ही गिरफ्तारी का वारन्ट निकलवा दूंगा, सारी जालसाजी निकल जाएगी सुमतप्रसाद की।

[बैंक बाबू का प्रवेश]

बैंक बाबू—नमस्ते, सेठ जी।

सेठ—आइये बैंक बाबू! इस माह की २० ता० को आपके यहां हमारा कोई चेक गया था?

बैंक बाबू—इतना याद रखना तो असम्भव है क्योंकि सैकड़ों चेक रोज़ आते जाते हैं। देखूं, ज़रा चेकबुक (पास बैठकर चेकबुक देखता है और याद करने की कोशिश करता हुआ) ओ! याद आया। शनिवार होने के कारण एक बजे ही बैंक बन्द हो चुका था, किन्तु आपका चेक था, इसलिये इसे ख़ास तौर से कैश कर दिया गया था।

सेठ—कौन चेक लेकर गया था?

बैंक बाबू—जहां तक याद आता है और मस्तिष्क काम करता है वह आदमी आपका छोटा मुनीम था।

सेठ—उसकी सूरत याद है?

बैंक बाबू—गोरा रंग, नाटा कद, उम्र लगभग ३० साल और.....

सेठ—ठीक है। वह सुमतप्रसाद ही था और इसे हम पहले ही समझ गये थे। वह आदमी यहां से नौकरी छोड़कर चला गया है, इसलिए अभी हम उसे आपके सामने शनाख्त के लिए पेश नहीं कर सकते। खैर, अदालत में तो आप उसे पहिचान लेंगे न?

बैंक बाबू—जी, बखूबी।

[इतने में चमनलाल अपने कमरे से बाहर जाता दिखाई देता है।]

सेठ—कहां जा रहे हो, चमनलाल ?

चमन—एक काम से दस मिनट के लिए बाहर जारहा हूं।

सेठ—अभी ठहरो, थोड़ी देर में जाना। एक जरूरी बात की जांच पड़ताल हो रही है।

चमन—जो आज्ञा। (वापस चला जाता है)

बैंक बाबू—सेठजी ! यह वही आदमी है, जिसने चेक कैश किया था।

सेठ—आपको ठीक याद है ?

बैंक बाबू—मैं क़सम खाकर कह सकता हूँ।

सेठ—सुमतप्रसाद के स्थान पर कहीं इसे पहिचानने में आप भूल तो नहीं कर रहे हैं ?

बैंक बाबू—मेरी आंखें कभी धोखा नहीं खा सकती।

सेठ—अच्छा, अब आप जा सकते हैं। आवश्यकता पड़ने पर फिर कष्ट दूंगा। (नमस्ते करके बैंक बाबू का प्रस्थान) क्यो मुनीम जी ! आप तो इसकी बड़ी प्रशंसा किया करते थे। अब बताइये, क्या किया जाए।

दर्शन—उसे बुलाकर पूछिये।

सेठ—(पुकारता है) चमनलाल !

चमन—(अन्दर से) जी।

सेठ—इधर आओ।

चमन—बहुत अच्छा।

गोपीचंद—(आकर सेठ के पास बैठता हुआ) कुछ पता चला ?

सेठ—सब चमनलाल की कारवाई है।

गोपीचंद—(आश्चर्य्य से) चमनलाल की ?

सेठ—हां ! (चमनलाल वहां आ जाता है सेठ उसे मुसन्ना दिखाता है) तुम इस चेक के विषय में कुछ जानते हो ?

[चेकबुक देखते ही चमनलाल के मुख का रंग उड़ जाता है। वह घबरा उठता है।]

चमन—जी नहीं।

सेठ—(डांट कर) होश में उत्तर दो। तुमने गत शनिवार को इसे कैश किया था ?

चमन—(अपने को सम्हालता हुआ) ओ ! ·····गत शनिबार को ?····· जी हां, याद आया, मैंने ही इसे कैश किया था।

सेठ—तुम्हें यह चेक कहां से मिला ?

चमन—मुझे सुमतप्रसाद ने दिया था।

सेठ—(दर्शनलाल के प्रति) और आपने चेक सुमतप्रसाद को दिया था ?

दर्शन—जी हां।

सेठ—(चमनलाल से) तुम जानते हो गोपीचन्द जी ने केवल ३) रु० का ही चेक दिया था ?

चमन—जी नहीं, ३००) रु० का।

सेठ—बको मत। मुझे अच्छी तरह मालूम है कि चेक ३) रु० का दिया गया था। तुमने अथवा सुमतप्रसाद ने जालसाजी करके तीन का तीन सौ बना लिया है।

चमन—मैंने ? ··· नहीं, सेठजी ! सुमतप्रसाद ने मुझे ३००) रु० का ही चेक दिया था।

सेठ—अच्छा, यही सही। चेक लेकर वह बैंक स्वयं क्यों नहीं गया ?

चमन—(गोपीचन्द को संकेत करके) बाबू जी के पास वह कुछ जरूरी कागज लिए जा रहा था। मैं खाली था, इसलिए उसने मुझे दे दिया था।

सेठ—तो तुम यह कहना चाहते हो कि सुमतप्रसाद ने ग़बन किया है और इसमें तुम्हारा कोई हाथ नहीं ?

चमन—मेरा यह मतलब नहीं, सेठजी ! मैं तो इतना ही जानता हूँ कि सुमतप्रसाद ने मुझे चेक दिया था और मैंने रुपये उसे लाकर दे दिये थे।

सेठ—(दर्शनलाल से) सुमतप्रसाद को यहां से गये कितने दिन हुए, मुनीम जी ?

दर्शन—वह सोमवार से यहां नहीं आरहा है।

सेठ—क्यों चमनलाल ?

चमन—जी हां, शनिवार के दिन ही उसने अपना सारा काम मुझे सौंप दिया था।

सेठ—शनिवार की सुबह से ही चेकबुक गोपीचन्द की जेब में थी और उस दिन वह उसे भूल से घर ले गया था। फिर बृहस्पतिवार के दिन आवश्यकता पड़ने पर चेकबुक ख़ास तरीके से घर से मंगवाई गई थी। तुम्हें याद होगा, गोपीचन्द !

गोपीचंद—जी हां,

सेठ—यदि सुमतप्रसाद ने ग़बन किया होता, तो मुसन्ने पर कोई परिवर्त्तन न होता। मुसन्ने की रद्दोबदल यह प्रमाणित करती है कि इसमें सुमतप्रसाद का कोई हाथ नहीं, बल्कि और किसी का हाथ है क्योंकि इसमें जो किया गया है, बृहस्पतिवार के बाद। (सब चुप रहते हैं। कुछ क्षण तक सन्नाटा छाया रहता है) क्यों चमनलाल ? क्या अब भी तुम अस्वीकार करोगे कि यह शुभ-कार्य्य तुम्हारे द्वारा निष्पन्न नहीं हुआ है ?

चमन—(घबराकर) मैंने ..... मैंने ..... यह चेक ..... मैंने तो .....

सेठ—(चीत्कार करके) हां तुमने, चमनलाल, तुमने ! तुमने ही ऐसा किया है। सच बोलो, क्या मामला है !

चमन—(कुछ देर के बाद सिर झुकाये) जी हां, मुझ से ही यह ग़लती हो गई थी।

सेठ—क्यों ग़लती हो गई थी ?

चमन—मुझे रुपयों की सख़्त ज़रूरत थी।

सेठ—तुम्हें रुपयों की ज़रूरत होगी, तो तुम चोरी करोगे, किसी की हत्या कर डालोगे ?

चमन—संसार में ऐसे लोगों की कमी नहीं, सेठजी ! जो परिस्थिति के आधीन चोरी भी करते हैं और हत्या भी। मैं चारों ओर से निराश होगया था, इसलिए मुझे ऐसा करना पड़ा।

सेठ—निराशा में भी क्या मनुष्य तुम्हारे जितना साहस कर सकता है ?

चमन—जब आशा मनुष्य का साथ छोड़ देती है, तो उसे निराशा में ही बल मिलता है, सेठजी ! आपके दफ्तर से थक कर घर जाने के बाद, जो हाथ थकावट के मारे भोजन नहीं बना सकते थे और मुझे भूखा सो जाना पड़ता था, उन्हीं हाथों में निराशा के कारण इतनी शक्ति आ गई कि मैंने आपके रुपये चुराकर अपनी बहन को दे दिये।

गोपीचंद—बहन को ?

चमन—हां, बहन के लिये ही मैंने चोरी की है। बचपन से अनाथ होने के कारण मेरी कमज़ोर पीठ पर उसका बोझ रहा है। मैं ग़रीब था इसलिए कहीं भी उसके लिए मुझे योग्य पात्र नहीं मिल सका।

गोपीचंद—तो तुमने अभी तक उसका विवाह नहीं किया ?

चमन—किया, किन्तु एक दुश्चरित्र शराबी से, क्योंकि इसके अतिरिक्त मेरे पास और कोई चारा नहीं था; किन्तु इसका जो भीषण परिणाम हुआ, उसकी कल्पना मैंने स्वप्न में भी नहीं की थी। कोई दिन ऐसा न होता कि उसके शरीर का तिल भर स्थान भी जूतों और बेतों के दाग़ से वंचित रह जाए। मैंने हृदय को पाषाण बना कर सब सहन कर लिया। वह एक २ पैसे को तंग रहती और .....

सेठ—और तुमने रुपये चुराकर उसकी तंगी दूर करदी ?

चमन—हां, सेठजी ! मुझे यही करना पड़ा। परिस्थिति इतनी भयंकर हो उठी कि मैं अपने को नहीं सम्हाल सका। पच्चीस दिन की बात है कि उस लम्पट ने एक बच्चे को छत पर से ढकेल कर उसकी हत्या कर डाली और अब मेरी बहन और उसके दो बच्चे भी उसके नशे की ज्वाला में अपनी आहुति देने जा रहे थे।

सेठ—मैं मानता हूँ वह ऐसा कर लेता, किन्तु रुपयों से उसका कैसे उद्धार हो सकता था ?

चमन—मैंने तय कर लिया था कि चुपके बहन और उसके बच्चों को लेकर मामाजी के यहां जैपुर छोड़ आऊंगा। महीने में २०) रु०

मिलते हैं आपके यहां से। इससे अपने पेट के ही चारों कोने नहीं भरते। यहां से उन्हें ले जाने के ख़र्च के लिए ही मुझे आपके रुपये चुराने पड़े।

गोपीचंद—यदि तुम उन्हें यहां से नहीं ले जाते तो क्या होता ?

चमन—वह किसी क्षण इनकी हत्या कर सकता था। एक दिन की बात मुझे अच्छी तरह याद है, जब प्रातःकाल वह बच्चों को लेकर मेरे पास आई थी। उसके सिर से रक्त निकल रहा था, पीठ पर बेतों के ताज़े दाग़ थे, घसीटे जाने के कारण उसका सारा शरीर बुरी तरह छिला पड़ा था और गले पर उंगलियों की छाप थी—गला घोंट कर उसे मार डालने की कोशिश की गई थी। उसे देखकर मेरा रोम रोम सिहर उठा। उस घरना की कल्पना अब भी मेरे लिए असह्य है।

गोपीचंद—(दिलचस्पी लेता हुआ) तब, उसके बाद ?

चमन—दफ्तर आया तो काम में बिलकुल मन नहीं लगा। बार बार यही सोचता रहा कि फिर वैसा हुआ तो अवश्य उसकी मृत्यु हो जाएगी। बहन की सूरत और उस पर किये गये अत्याचार चल-चित्र की भांति आंखों के सामने नाच गये। इतने में सुमतप्रसाद ने वह चेक मुझे लाकर दिया। मुझे ऐसा मालूम हुआ मानो उसकी मूक आंखें कह रही हैं, "लो यह भगवान का आशीर्वाद। उन्होंने तुम्हारी बहन की पुकार सुन ली।"

सेठ—उसके बाद ही तुमने ग़बन करने की ठान ली ?

चमन—मैं आप से सच कहता हूं कि मुझे बिलकुल याद नहीं कि ऐसा करने की कुभावना का मेरे हृदय में कब प्रादुर्भाव हुआ और मैंने कब चेक में रद्दोबदल की। इतना अवश्य याद है कि दूसरे क्षण मैं बैंक में था और रुपये मेरे हाथ में। अपने पाप का प्रतिबिंब जब पहली बार मेरे मस्तिष्क में आया, तो मैं पश्चात्ताप की अग्नि में जलने लगा। जी में आया कि रुपये नाली में फेंक कर सामने से आती हुई मोटर के पहियों में जा कूदूं, किन्तु उसी समय

आर्द्रा बहन की करुण मूर्ति आंखों के सामने आ खड़ी हुई, उसका आर्तनाद कानों के परदे से टकराने लगा, मैं अचेत-सा आकर अपनी कुर्सी पर बैठ गया।

सेठ—तो तुम्हें यह याद नहीं कि तुमने चेक पर कब रद्दोबदल किया ?

चमन—जी नहीं।

सेठ—और मुमन्ने पर संख्या बढ़ाने की बात भी तुम्हें याद नहीं ?

चमन—जी हां, यह अच्छी तरह याद है।

सेठ—तो इससे यह प्रमाणित हुआ कि तुम इस कार्य्य के लिए अवसर की तालाश में थे ?

चमन—जी हां।

सेठ—किस दिन तुमने ऐसा किया ?

चमन—शुक्रवार के दिन।

सेठ—कभी तुमने यह नहीं सोचा कि रुपये वापिस करके अपना अपराध स्वीकार करलूं ?

चमन—कई बार सोचा, किन्तु भय से ऐसा न कर सका।

सेठ—यह तो तुम जानते ही हो कि तुम्हारे जाने के बाद हमारा सन्देह सुमतप्रसाद पर होता और वह पकड़ा जाता। क्या तुम्हें उसके ऊपर दया नहीं आई ?

चमन—इसीलिए तो मैंने निश्चय किया था कि किसी से कर्ज़ लेकर या कमाकर आपके रुपये जैपुर से अवश्य भेज दूंगा।

सेठ—अच्छा जाओ, अपना काम करो। बड़ी सफ़ाई पेश करना जानते हो। (नतमस्तक चमनलाल का प्रस्थान) कोतवाली में फ़ोन कर दिया है, गोपीचन्द ?

गोपीचंद—जी हां ! क्या आप इसे पुलिस के हवाले करना चाहते हैं ?

सेठ—हां।

गोपीचंद—पिताजी ! यह उसकी पहली भूल है !

सेठ—इसीलिए मैं उसे अदालत के सुपुर्द करना चाहता हूं ताकि उसे फिर दुबारा ऐसी भूल करने का प्रोत्साहन न मिले।

गोपीचंद—उसकी परिस्थिति में ऐसा करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को बाध्य होना पड़ता। सोचिये तो ज़रा उसकी बहन की दुर्दशा को। ऐसी अवस्था में क्या आप और मैं ऐसा न करते?

सेठ—परिस्थिति का मनुष्य के चरित्र के ऊपर क्या महत्व है? मनुष्य परिस्थिति के आधीन नहीं।

गोपीचंद—परिस्थिति के आगे मनुष्य बेबस है। जहां प्रत्यक्ष रूप से वह मनुष्य के आधीन दीख पड़ती है, वहां भी वास्तव में मनुष्य ही परिस्थिति के हाथों का खिलौना बनकर उसके इशारों पर नाचता फिरता है। इसी का दूसरा नाम है, मजबूरी।

सेठ—तो क्या मजबूरी में मनुष्य को चोरी जैसा घृणित कार्य्य करना चाहिये?

गोपीचंद—यदि घर में आग लगी हो तो उसे नाबदान के पानी से बुझाना पाप नहीं। मुझे उसका अपराध अस्वीकार नहीं. मैं तो केवल यह कहना चाहता हूं कि जालसाजी करना उसका पेशा नहीं, केवल बेबसी में ही उसे ऐसा करना पड़ा है। ऐसा वज्र-हृदय भाई कहीं नहीं मिलेगा, जो बहन की ऐसी विकट दुर्दशा को देखकर पाषाण बना रहे—और वह भी एक हिन्दू बहन, जिसे पति के अमानुषिक व्यवहारों से मुक्ति पाने का कोई मार्ग नहीं; वह बहन, जो मृत्यु को गले का हार बनाकर जीवन से खेल रही है।

सेठ—क्या यह ज़रूरी है कि जो वह कह रहा है, सत्य है?

गोपीचंद—क्या अब भी आप उससे झूठ बोलने की आशा करते हैं, पिताजी! हमारे जीवनका सबसे बड़ा अभिशाप यही है और हमारे अस्तित्वकी सबसे भीषण ट्रेजेडी यही है कि एक बार ग़लती कर लेने के बाद हज़ार पश्चात्ताप करके भी हम उसका प्रतिकार नहीं कर सकते उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप आजीवन जलकर भी, अपने सिर से पाप का बोझ हल्का नहीं कर सकते। अपने किये हुए पापों के एहसास से बढ़कर मानव के लिए दूसरा कोई प्रायश्चित्त नहीं। और वही चमनलाल कर रहा है।

सेठ—मैं उसके सारे जुर्म माफ़ कर सकता था, किन्तु यदि यह बात न खुलती तो बेचारा निरपराध सुमतप्रसाद मारा जाता। मैं उसका यह अपराध माफ नहीं कर सकता, गोपीचन्द !

गोपीचंद—जब इतनी छोटी भूलों को देखकर हम आंख फेर लेने की क्षमता नहीं रक्खेंगे, तो आंखों के सामने दिन दहाड़े बड़े बड़े अपराधों को विस्मृति के अतल उपकूल में विलीन होते देख, हम कैसे जिन्दा रहेंगे, पिताजी ! हमें चमनलाल का जुर्म जितना बड़ा मालूम पड़ रहा है, यह वास्तव में उतना बड़ा नहीं है। एक जो जुर्म कर फांसी के तख्ते पर जाता है, दूसरा वही जुर्म कर एक साम्राज्य का अधिकारी होता है। जुर्म की भी क्या कोई कसौटी होती है, पिताजी !

सेठ—हां, जुर्म की कसौटी होती है और वह है क़ानून। इससे सामाजिक जीवन का सुधार होता है।

गोपीचन्द—और इस सुधारमें विनाश की भी एक बहुत बड़ी लचक होती है।

सेठ—नहीं, कानून एक ऐसी आंधी है, जो अपने अदम्य वेग में देश और समाज की तमाम बुराइयों को दूर बहा ले जाती है।

गोपीचन्द—साथ ही वह ऐसी भयानक आंधी है, जो लौटकर नहीं देखती कि उसके वेग से कौन सी लता टूटी, कौनसा वृक्ष उखड़ा, कौनसी बसी बसाई छत कब और कहां उड़कर चली गई। कानून अन्धा होता है।

सेठ—कानून अन्धा हो सकता है, किन्तु इसे राह पर चलानेवाला इसका संचालक न्याय अन्धा नहीं। न्याय एक औषधि है, जिसे पीकर आत्मा की बड़ी से बड़ी कालिमा धुल जाती है।

गोपीचंद—जी नहीं, न्याय एक ऐसा बोझिल रथ है, जिसके पहियों के नीचे एक बार कुचले जाने के बाद मनुष्य के जीवन की रीढ़ सदा के लिए टूट जाती है। वह उठकर कभी खड़ा नहीं हो सकता, उसे समाज में स्थान नहीं मिलता। आपकी दृष्टि में कानून और न्याय

कोई महत्वपूर्ण वस्तु हो सकती हैं, किन्तु मेरी राय में यह एक मकड़ी का जाला है जिसमें निरीह और निर्बल प्राणी एक बार फंसकर कभी वापिस नहीं निकलते, किन्तु एक साधन-सम्पन्न व्यक्ति के जाते ही इसके ताने बाने स्वयं टूटकर बिखर जाते हैं। चमनलाल निरीह और निर्बल प्राणी है, उसे क्षमा कर देना ही न्याय है, पिताजी !

मक्खन—(आकर) कोतवाल साहब आये हैं।

सेठ—उन्हें यहां ले आओ। (मक्खन का प्रस्थान) देखो गोपीचन्द ! संसार के सारे अपराधियों को क्षमा कर देने की उदारता में और किसी को क्षमा न करने की निष्ठुरता और हृदय-हीनता में ज्यादा फर्क नहीं। मैं अपनी ज़िम्मेदारी समझता हूँ। इसलिए कोतवाल साहब के सामने वाद-विवाद की आवश्यकता नहीं, काफ़ी बहस हो चुकी है।

गोपीचन्द—मेरी तबियत खराब होरही है, मैं घर चला पिताजी !

[एक ओर गोपीचन्द का प्रस्थान और दूसरी ओर से कोतवाल साहब का प्रवेश।]

कोतवाल—आदाब अर्ज़ है, सेठजी !

सेठ—तस्लीम, तस्लीम ! आइये कोतवाल साहब ! इधर तशरीफ लाइये।

[कोतवाल सेठ के पास आकर बैठ जाता है।]

कोतवाल—मुझे किस लिए आप ने याद किया सेठजी ?

सेठ—(अन्दर की तरफ पुकारता हुआ) चमनलाल ! ज़रा इधर आना।

[चमनलाल आता हैं और कोतवाल को देखकर उसके होश उड़ जाते हैं। वह उसे सलाम कर सेठजी के पास खड़ा हो जाता है।]

सेठ—मेरे दफ़्तर में ग़बन हुआ है और इतनी होशियारी से कि गबन करने वाले की तारीफ़ करनी पड़ती है।

कोतवाल—कितने रुपयों का ग़बन हुआ है ?

सेठ—२६७) रु० का। ३) रु० के चेक को ३००) रु० का बनाकर उसे कैश कर लिया गया है। यह लीजिए चेकबुक (चेकबुक खोलकर सामने

रख देता है) यह है वह मुसन्ना और ये हैं श्री चमनलाल, मेरे दफ़्तर के मुनीम। ग़बन करने का कमाल आपको ही प्राप्त है और आपने अपना जुर्म भी स्वीकार कर लिया है।

कोतवाल—(चमनलाल को आंखें दिखाता हुआ) क्या यह ठीक है?

चमन—(सेठ से) चाहे जैसे हो मैं आपके रुपये वापस कर दूंगा। इस बार मुझे क्षमा कर दीजिये, फिर ऐसी ग़लती कभी नहीं होगी।

कोतवाल—तो फिर इसे अपना ग़बन क़बूल है।

सेठ—आपके ही सामने कह रहा है।

कोतवाल—तो मैं इसे कोतवाली लिये जा रहा हूँ।

चमन—(रोकर सेठ से) सेठजी! मैं आपके पैर पकड़ता हूं, मुझे पुलिस के हवाले न कीजिए। मुझे केवल इस बार क्षमा कीजिये। (सेठ के पैरों पर गिर पड़ता है)

कोतवाल—चलो उठो। तुम्हें जो कहना है, अब कोतवाली चलकर कहना।

[खींचकर उसे सेठजी के पैरों पर से उठा लेता है।]

चमन—दुहाई है आपकी सेठजी? मुझे बचा लीजिए, मेरी अनाथिनी बहन पर दया कीजिये, वह घर छोड़कर चली आई है, मेरे अतिरिक्त अब उसके लिये कहीं स्थान नहीं रहा। सेठजी! मुझे केवल इस बार क्षमा कर दीजिये, मुझ पर तरस खाइये.....

[कोतवाल उसे खींचकर ले जाता है। देखा जाता है कि दर्शनलाल अपने आंसू पोंछ रहे हैं।]

दूसरा दृश्य

स्थान—वही दफ्तर। समय—तीन वर्ष बाद

[दर्शनलाल अपने पुराने स्थान पर बैठे हैं। चमनलाल फटे पुराने मैले चीथड़ों में उनके सामने खड़ा है। उसका स्वास्थ्य पहले से बहुत गिर गया है। उसकी दाढ़ी बढ़ी हुई है, आंखें धंसी हुई और मुख पर निराशा और वीरानी की रेखायें स्पष्ट रूप से दीख रही हैं।

दर्शन—तीन वर्ष.....हां, पूरे तीन वर्ष के बाद तुमसे मुलाकात हो रही है चमनलाल! क्या इतने दिन जेल ही में रहे?

चमन—ढाई वर्ष जेल में रहा और छः महीने दुनिया की ख़ाक छानता फिरा।

दर्शन—तुम्हें दो वर्षों का ही कारावास मिला था न?

चमन—जी हां, दो वर्ष की कैद और ५००) रु० जुर्माना, जिसे अदा न कर सकने के कारण छः महीने और कैद में रहना पड़ा।

दर्शन—जेल से छूटने के बाद तुम छः महीने तक क्या करते रहे?

चमन—दो एक जगह नौकरी की, किन्तु टिक न सका। फिर इधर उधर मारा फिरता रहा।

दर्शन—क्यों?

चमन—एक बैंक में नौकरी मिली थी। दो माह भी नहीं व्यतीत हो पाये थे कि एक बाबू को मेरे अतीत इतिहास का पता चल गया। उसने मैनेजर से शिकायत करदी और मैं निकाल दिया गया।

दर्शन—उसके बाद?

चमन—उसके बाद एक सेठ के यहां मुनीम हुआ। वहां तो सात दिन भी न रह पाया था कि भेद खुल गया। धक्के देकर निकाल दिया गया और तनख्वाह ज़ब्त। अब तो मेरा जेल जाना अभिशाप का टीका बनकर सदा मेरे माथे पर मौजूद रहता है। काफी प्रसिद्ध हो चुका हूँ। जहां जाता हूँ, दरबान ही अन्दर घुसने नहीं देता।

दर्शन—तुम्हारी बहन का आजकल क्या हाल है?

चमन—जिस दिन मैं पकड़ा गया, उसी दिन स्टेशन पर रेल के नीचे दब कर उसने आत्महत्या करली। (आंखों में आंसू आ जाते हैं) बेचारी ने एक बार मुझसे मिलने तक की चेष्टा न की।

दर्शन—और उसके बच्चे?

चमन—शायद अनाथालय में भेज दिये गये।

दर्शन—तुम उनसे मिले?

चमन—कौनसा मुंह लेकर उनसे मिलने जाता? अपनी अपवित्र छाया उनपर

डालकर मैं उनका भी भविष्य नहीं नष्ट करना चाहता।

दर्शन—तुम्हारी दुर्दशा सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ, चमनलाल! किसी दूसरे नगर में नौकरी तालाश कर लेते।

चमन—अब कहीं जाने का साहस मुझ में नहीं रहा। जेल से छूटने के बाद एक बार जैपुर मामाजी के यहां गया था। दो दिन भी उनके यहां अच्छी तरह नहीं रह पाया था कि मामीजी बोली, "तुम जानते हो, चमनलाल! लड़कियों के ब्याह की बातचीत चल रही है। तुम्हारे यहां रहने से उनका संबंध अच्छी जगह न हो सकेगा। लो, ये दस रुपये और यहां से चले जाओ।" मैंने सधन्यवाद उनके रूपये लौटा दिये और फिर किसी के यहां नहीं गया। अब मुझे मनुष्य से घृणा होगई है। अकेला ही अपने पापों का बोझ ढोता फिर रहा हूं।

दर्शन—पाप का बोझ?

चमन—आजकल मैं लोगों की जेब काटकर अपना निर्वाह करता हूँ।

दर्शन—(आश्चर्य्य से) जेब काटकर?

चमन—जी हां! जेल में एक प्रवीण जेब काटने वाले से मेरी मित्रता हो गई थी। ढाई वर्ष में उसने इस कला का सारा रहस्य मुझे बता दिया। अब मैं पूर्ण सफलता से किसी की भी जेब काट सकता हूं।

दर्शन—मैं यह क्या सुन रहा हूँ, चमनलाल! क्या मनुष्य का इतना पतन हो सकता है?

चमन—पेट के गड्ढे को भरने के लिए मेरे पास और क्या चारा था?

दर्शन—मैं उसकी व्यवस्था करूंगा। आज ही सेठजी से कहकर तुम्हारी पुरानी जगह तुम्हें दिलवा दूंगा। तुम अपनी आत्मा के धब्बों को धो डालने का यत्न करो।

चमन—मैं भी इसीलिए आपके पास आया हूँ, मुनीमजी! कई दिनों से बिना खाये, पीये, सोये, मैं, अपनी आत्मा की फटकार बुरी तरह सुन रहा हूँ। स्टेशन की बेंच पर पड़े पड़े मैंने रुपयोंसे भरे जेबों को

आंखों के सामने से गुजरते देखा, जिन पर अल्प प्रयास मात्र से ही मैं स्वामीत्व प्राप्त कर सकता था, किन्तु मैंने घृणा से मुख फेर लिया। एक बार फिर निष्पाप जीवन व्यतीत करने की ठानी है। आप मुझे यहां जगह दिलवा दें।

[सेठ विलासराय और गोपीचन्द प्रवेश करते हैं। दर्शनलाल उनका अभिवादन करते हैं और जब उनकी दृष्टि चमनलाल पर पड़ती है तो उसे वे कठिनाई से पहिचान पाते हैं।]

सेठ—अरे चमनलाल ! तुम यहां कैसे ?

दर्शन—नौकरी की तालाश में आया है।

सेठ—चमनलाल हमेशा मेरे और गोपीचन्द के तर्क का विषय बना रहा। हम तो निर्णय ही कर चुके थे कि जेल से आते ही इसकी जगह इसे दे देंगे। (चमनलाल से) हमारा तुम्हारे साथ कोई वैर नहीं था, चमनलाल ! सुधारने के अभिप्राय से ही तुम्हें कानून के हाथों सौंपा गया था।

चमन—उस समय क्षमा करके ही आप मेरा अधिक उपकार कर सकते थे, सेठजी ! आज मैं पतन के जिस गड्ढे में जा गिरा हूं, उसका उत्तरदायित्व मेरी ढाई साल की क़ैद ही है। आज मैं बहन और उसके बच्चों को खोकर जिस अकेलेपन का अनुभव कर रहा हूँ, उसका प्रतिदान संसार का सारा साम्राज्य भी नहीं कर सकता।

सेठ—खैर, जो हुआ, सो हुआ। अब मैं तुम्हारी जगह तुम्हें फिर देता हूँ।

चमन—मैं आपका आभारी हूँ। जीवन की यही मेरी अन्तिम और क्षीण आशा थी।

सेठ—तुम्हारी हालत बहुत दर्दनाक मालूम हो रही है। कुछ रूपयों की आवश्यकता हो, तो पेशगी में ले सकते हो।

चमन—मेरे पास इस समय एक पैसा नहीं है। मैं तीन दिन का भूखा हूं।

सेठ—गोपीचन्द ! चमनलाल को २०) रु० का चेक दे देना !

गोपीचंद—पिताजी फिर चेक ?

सेठ—नहीं, चेक से नहीं। मैं इसे अपने पास ही से दूगां। (जेब से निकाल कर उसे रुपये देता हुआ) यह लो, एक माह की पेशगी। हमें तुम्हारा विश्वास है। कल से काम पर आ जाना।

चमन—बहुत अच्छा।

[नमस्कार कर जैसे ही जाना चाहता है, सामने से कोतवाल और दो सिपाही प्रवेश करते हैं।]

कोतवाल—(चमनलाल से) क्यों बे! कहां है तीन दिन से? कहीं तेरा पता भी है?

सेठ—क्या किया है इसने, कोतवाल साहब!

कोतवाल—तीन दिन से, न जाने, कहां लापता है और न कोतवाली में ही हाजिरी देने आया है। इन दो रातों में शहर में आठ नक़ब लग चुके। सब इसी पाजी का काम है। (सिपाहियों से) बांध लो बदज़ात को।

[सिपाही चमनलाल को गिरफ्तार कर लेते हैं।]

चमन—आज फिर गिरफ़्तार होते समय पहले की तरह न तो मुझे भय है और न क्षोभ ही। पहली बार जुर्म करके भी अदालत के सामने मुझे बहुत कुछ कहना था और आज, निर्दोष होकर भी, मुझे कुछ नहीं कहना है। लगातार कई महीनों तक सफलता के साथ, न जाने, कितनी जेबें काटी होंगी, किन्तु गिरफ़्तारी तो दूर रही, कोतवाल साहबको मुझपर सन्देह तक नहीं हुआ। आज जब पापों को तिलांजलि दे पवित्र और निष्पाप जीवन को फिर निर्वाह करने का स्वप्न देखा, तो शहर की तमाम चोरियों की ज़िम्मेदारी मेरे ऊपर है। कल जेल से छूटकर आया, आज पकड़ा गया कल फिर आऊंगा, परसों फिर गिरफ़्तारी होगी। क्या बुरा है, इसी क्रम में यदि जीवन कट जाये। आइये कोतवाल साहब! (प्रस्थानोद्यत)

सेठ—कोतवाल साहब! इस बार मेरे कहने से आप इसे छोड़दें। जो लगे, मैं ख़र्च करने को तैय्यार हूं।

कोतवाल—अब तो क़तई मजबूरी है सेठजी ! पहली दफा मेरे हाथ
थी । आप कहते तो मैं ज़रूर छोड़ देता, लेकिन अब इस
दफ़्तर की किताबों में दर्ज हो चुका है । अच्छा, माफ़ी च
(सिपाहियों से) कोतवाली ले चलो इसे ।

[आगे कोतवाल, पीछे सिपाही चमनलाल को ले जाते हैं ।]

गोपीचंद—क्या कहा था मैंने पिताजी ! उस समय ही क्षमा करके
इसका सुधार कर सकते थे, किन्तु आपने मेरी एक न म
आपने केवल इसका जीवन और भविष्य ही नहीं बिगाड़ा,
इसकी बहन की हत्या का पाप भी आपके ही सिर है । जब
यह जीयेगा, कहीं सुदूर बैठा हुआ अपने जीवन का मरसिया
पढ़ा करेगा और आप सोते, जागते, उठते, बैठते उसे सुना
कीजियेगा । आज आपकी आत्मा के चारों ओर एक दरिद्र की
हत्या और उसके अभिशाप की काली लकीरें खिच गईं और लाख
पश्चात्ताप करके भी आप उसका प्रतिकार नहीं कर सकेंगे, जैसे
उस दिन चमनलाल आपके दफ़्तर में नहीं कर सका था । देखी,
आपने अपने क़ानून की कामयाबी ?

[हाथ पर गाल धरे सेठजी निर्वाक बैठे रहते हैं ।]

— समाप्त —